अनुक्रम

ज्ञान और आनन्दके इस संगममें !

१९२५ में जब मैं अपनी गुरुकुलियाके तंग घेरेसे निकलकर पत्रके क्षेत्रमें आया तो मैं श्री चण्डीप्रसाद 'हृदयेश' की संस्कृत-गर्भ शैलीसे पूरी तरह प्रभावित था। उन्हीं दिनों समागम होनेपर खूब घूमनेके बाद मैंने एक लेख लिखा था। पूरी जिम्मेदारीके साथ आज मैं यह कहता हूँ कि गद्य-काव्य लेख और रिपोर्ताजके बीच थे चरण।

कुछ लोग कहते हैं कि महायुद्ध-कालमें रिपोर्ताजका आविष्कार रूसमें हुआ और वहींसे यह भारतमें आया। निश्चय ही यह उन देशोंमें अपने स्वतन्त्र रूपमें पनपा होगा, हिन्दीको उसका श्रेय देनेकी आवश्यकता नहीं, पर हिन्दीमें यह स्वतन्त्र रूपमें पनपा है और उसपर किसीका किसी तरह का भी ऋण नहीं। हाँ, आरम्भ इस विधाके लिए रिपोर्ताज नाम रूसीके माध्यमसे हिन्दीने लिया, यह एक प्रत्यक्ष यथार्थ है।

स्पष्ट है कि मेरे सामने न रिपोर्ताज शब्द था, न उसके उदाहरण। फिर इसे लिखनेकी भावना मनमें कैसे जगी और उसका स्वरूप मेरे मनमें कैसे बना? इस प्रश्नका उत्तर एक लम्बी कहानी है। १९२५ में कानपुरमें कांग्रेसका अधिवेशन श्रीमती सरोजिनी नायडूके सभापतित्वमें हुआ। उसमें जानेकी तीव्र इच्छा थी, पर धनाभावके कारण मैं जा न सका, बहुत तड़प कर रह गया। फल यह हुआ कि दैनिक और साप्ताहिक पत्रोंमें कानपुर-अधिवेशनके सम्बन्धमें जो कुछ छपा, वह मैंने अक्षर अक्षर पढ़ा, पर सब कुछ पढ़नेके बाद भी मैं प्यासा रह गया। यह प्यास आनन्दकी थी। अधिवेशनमें जो कुछ हुआ, उस सारी रिपोर्टिङ्ग में उसका ज्ञान और विवरण तो था, पर आनन्द न था।

मुझे इससे बहुत बेचैनी हुई और मैंने बार-बार सोचा कि क्या यह रिपोर्टिंग इस तरह नहीं हो सकती कि जो लोग अधिवेशनमें नहीं गये उन्हें भी वहाँ जानेका कुछ-न-कुछ आनन्द आये। वे सौ प्रतिशत पाठक तो रहें ही पर दस-बीस प्रतिशत दर्शक भी हो सकें।

१९२९ में गुरुकुल काँगड़ीकी रजत-जयन्ती मनायी गयी और उसमें महात्मा गान्धी मालवीयजी और टी एल वास्वानीके आनेकी घोषणा हुई। मैं एक कृपालु बन्धुसे बारह रुपये उधार लेकर उस उत्सवमें गया और बहुत ही तल्लीनतासे मैंने उस उत्सवको देखा। मेरी आँखोंके लिए इतना बड़ा यह पहला ही उत्सव था। उत्साह अथाह, तो व्यवस्था अनुपम-पुलिसका कहीं नाम-निशान नहीं हर दम नया दृश्य नया अनुभव। मैं आनन्द-विभोर हो उठा।

घर लौटकर मैंने इस महान् उत्सवकी रिपोर्टिंग भी कई पत्रोंमें पढ़ी और फिर पहलेकी तरह निराश हुआ—वही रूखे विवरण जिसमें रसकी एक बूँद नहीं। यह उत्सव मैं स्वयं देख चुका था इसलिए मनमें आया कि अमुक-अमुक दृश्य इस विवरणमें जोड़ दिये जाते तो पाठकको कितना आनन्द आता! इस प्रकार पहले कल्पनामें और फिर कागजपर मैंने इस महोत्सवका रिपोर्ताज लिखा। वास्तविक रूपमें यही मेरा पहला रिपोर्ताज था। सन्-महीना-तारीखके आँकड़ोंमें खोजनेवाले इतिहास-लेखकोंका काम है कि वे देखें – यही हिन्दीका पहला रिपोर्ताज तो नहीं था!

इसमें अनेक ऐसे दृश्य थे ऐसे स्पर्श थे कि पाठक घर बैठे भी मानो उत्सवमें घूमनेका आनन्द उठा सके। गान्धीजी मालवीयजी वास्वानीजी डॉक्टर मुंजे आचार्य रामदेव और साधारण दर्शकोंकी ऐसी छोटी-छोटी झाँकियाँ और राह चलते देखी नन्हीं-मुन्नी घटनाओंके ऐसे बखान थे कि छिपकर पढ़ा तो दुबारा उत्सव देखनेका आनन्द आ गया – साथियोंमें भी जिसे सुनाया वही खिल उठा। रिपोर्ताजके स्वरूप और शिल्पको भरपूर जाननेके बाद आज युग-युगोंके बाद पूरी ईमानदारीके साथ मेरी

सम्मति है कि यह हिन्दीका सर्वांगपूर्ण रिपोर्ताज था ।

उन्हीं दिनों और भी कई रिपोर्ताज मैंने लिखे। 'बालक-उत्सव' के फरवरी १९४३ के अंकमें प्रकाशित मेरा एक रिपोर्ताज 'वेदोंका लोभ' भाई अमरबहादुर सिंह 'अमरेश' की डायरीमें सुरक्षित रह गया है। यह किसी घटनापर नहीं, इस विचित्र भावनापर आश्रित है कि भारतमें वेदोंका नाम तो सब लेते हैं, पर उनके अध्ययनकी कहीं भी उचित व्यवस्था नहीं है। बड़े ही मर्मस्पर्शी ढंगसे संस्मरणात्मक रूपमें यह बात कही गयी है। एक युवक वेदोंका अध्ययन करनेकी तीव्र इच्छासे चलता है और देशकी छोटी पाठशालासे हिन्दू विश्वविद्यालय तक पहुँचता है। वेदका नाम उसे जगह जगह मिलता है, पर कहीं अध्ययनकी सुविधा कहीं नहीं। वह थककर एक बागमें जा बैठता है और देखता है कि एक अंग्रेज वहाँ बैठा कुछ लिख रहा है।

पूछनेपर पता चलता है कि वह वेदोंका विद्वान् है और आजकल महीधरकी भाष्यप्रणालीके खण्डनमें एक पुस्तक लिख रहा है। यहीं रिपोर्ताजका अन्त इन शब्दोंमें होता है — मैंने सोचा, हाय, भारतीयोंको तो इतना समय नहीं है कि वे अपने ग्रन्थ वेदोंपर ध्यान दें और यह विदेशी वेदोंपर विवेचना कर रहा है और मुक्ति-मण्डन महीधरके भाष्यका खण्डन भारतमें ही बैठा हुआ कर रहा है। शोक! इस समय मुझे समस्त पृथ्वी और आकाश शून्य प्रतीत हुआ और मैं मूर्च्छित होकर वहीं घासपर लेट गया।

इस रिपोर्ताजको लिखकर ऐसा मालूम होता है कि मेरे चिरमित्र हो रहे मनमें यह प्रश्न उठा कि यह है क्या? साहित्यिक भाषामें था कि कल्पित इस कृतिके सम्बन्धमें मेरी जिज्ञासा विचारात्मक थी कि यह लेख नहीं है, कहानी भी नहीं है, घटनाक्रम भी नहीं है, तो फिर है क्या? रिपो-र्ताज शब्द तबतक चला न था, तो मेरी उस समयतक। लेकिन इस निब-न्धात्मक घटनाक्रम पर और यह कथन मन उठा। लगता कि

मैंने इसे 'जेलोंकी ओर' इस शीर्षकके नीचे उपशीर्षककी तरह लिखना आवश्यक समझा ।

१९२८ में अपनी जन्मभूमिके चौदी मेलेपर मैंने एक रिपोर्ताज लिखा और वह 'ब्राह्मण-सर्वस्व' में छपा भी पर इतना कट-छँटकर कि खण्डित हो गया – एक अच्छा समाचार ही रह गया । तब उठी गान्धीकी आँधी सच्चे-झूठे और आकाश हिलाते नारे – १९१ का आन्दोलन कि लिखना पढ़ना सब तूफ़ान रात-दिन एक ही धुन – चलो जेल !

यह आयी ४ सितम्बर १९१ और पहुँच गये जेल – एकदम नयी दुनिया । इस दुनियाकी एक खास चीज 'सी ओ' । यों किसी बुरे क़सूरमें जेल काटते क़ैदी पर क़ैदके अन्तमें सी ओ – कम्प्लिमेण्ट ओवरसियर – बिना वेतनके जेल अधिकारी हमारी बैरकके इंचार्ज । पीला पाजामा पीला कोट लाल टोपी और लाल टोपीपर कलगीकी तरह सामने ही छपा पीतलका C O – जेलशासनके प्रतिनिधि पर क़ैदीके ईश्वर !

बड़ा अद्भुत था सी ओ चरित्र । उसपर एक रिपोर्ताज लिखा । बड़ा ही व्यंग्यात्मक और चुभचुभा । उसे सी ओ के ही सहयोगसे बर भेज दिया और बादमें वह किसी पत्रमें छपा भी पर इसके बाद जेलके जीवनपर जो पाँच-छह रिपोर्ताज लिखे थे एक दिन जब मैं मुजफ्फरनगर था तलाशीमें सब लेकर श्री गुरुप्रसादके हाथ पड़ गये और फिर कभी उस पंजेसे बाहर नहीं निकले । जीवनमें मेरे चार पुत्रोंकी मृत्यु हुई है । वे चारों ही सुन्दर-होनहार थे पर इनसे ज्यादा मुझे अपने रिपोर्ताज बार बार और कसकके साथ याद आये हैं ।

तब १९१२ का तूफ़ान – मेरी दूसरी जेलयात्रा । वायसराय लार्ड लिनलिथगोका दमनचक्र चारोंपर । १९१ में जो लोग जेलोंके ए क्लासमें रखे गये थे उनमें-से अधिकांश बी क्लासमें पर मैं एक अपवाद कि १९१ में सी क्लासमें था और १९१२ में रहा बी क्लासमें । इसकी भी एक मज़ेदार कहानी । १९१ में मुझे बी क्लास मिला तो मैंने कहा मेरे

मापस सुनकर वा देहाती भाई स्वयं सेवक बन जेल जायं हैं वे सी क्लासमें चने चाबें और मैं बी क्लासमें दूधका दलिया खाऊँ यह मानवी-भावनाके विरुद्ध है, मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकता। और अपना क्लास छोड़ दिया।

१९१२ में जेल गया तो बीमार था और पकड़ा गया उस दफ़ामें जिसमें पण्डित जवाहरलाल नेहरू और दूसरे दस-पाँच ही उत्तर प्रदेशमें पकड़े गये थे इमरजेन्सी पावर ऑर्डिनेन्स। सजा हुई दो सालकी। मैजिस्ट्रेट मी बी बी जिन्होंने बी क्लास लिखा पर अँगरेज जिलाधीश भी मुझसे कई बार मेरी झपट हो चुकी थी इसलिए उसने उसी दिन उसे सी कर दिया। मेरे कुटुम्बके 'बड़े आदमी' श्री पण्डित आत्मारामजीने मुझसे कहा 'कन्हैयालाल मेरा भतीजा है, कहना नहीं मानता कांग्रेसमें काम करता है। आप उसे जेल भेजते हैं यह ठीक ही है, पर आपने उसे सी क्लासमें क्यों रख दिया?'

कलक्टर कुक साहब बोले "हमने उस बदमाशको इसलिए सी क्लासमें रखा कि सरकारने कोई डी क्लास नहीं बनाया!" यह समाचार मेरी पत्नी प्रभाने मुझे दिया तो सुनकर बड़ा गुस्सा आया। अँगरेजोंसे हर मोर्चेपर युद्ध यही उन दिनोंकी मनोवृत्ति थी। कुत्तेकी नाक काटना है हुआ उसकी योजना बनी। दूसरे ही दिन प्रभाजीने होम मेम्बरको एक रजिस्टर्ड पत्रमें लिखा 'मेरे पति लेखक हैं पत्रकार हैं रायल एशियाटिक सोसायटी लन्दनके मेम्बर हैं एक ऊँचे कुटुम्बके सदस्य हैं, उनका रहन-सहन ऊँचा है। फिर भी वह बीमारीकी हालतमें बदलेकी भावनासे सी क्लासमें रखा गया है। सचाई यह कि यह सब सच होते भी बेचारा कन्हैयालाल उन दिनों बीस रुपये महीनेपर संस्कृत विद्यालयमें अध्यापक था।

तहसीलमें पूछ-ताछके बाद बाईसवें दिन मुझे बी क्लासमें रखनेका आदेश आ गया और मैं सहारनपुर जेलकी बैरक नम्बर ७ से बैरक नम्बर

११ में बदल दिया गया। समयकी बात दूसरे ही दिन भी कुछ चेकिंग निरीक्षण करने आये और मुझे भी क्लासमें देखा तो चेकरसे पूछा इस पण्डितको तुमने ही क्लासमें रखा था। उनके जवाब देनेसे पहले ही मैंने जोरसे कहा 'लेकिन आपके हिन्दुस्तानी आकाने भी क्लासमें कर दिया है।' उन दिनों नवाब छतारी साहब होम मेम्बर थे। बड़ा झेंपे कुछ साहब और तुरन्त दूसरी बैरकमें चले गये।

बी क्लासका मेरे लिए सबसे बड़ा आनन्द ११ नम्बरके बँगलेसे दिखा — हरा-भरा खेत था और बादमें फ़ैज़ाबाद जेलमें उत्तर प्रदेशके श्रेष्ठ राज-नैतिक नायकोंसे सम्पर्क पाना। तो इसी हरे-भरे खेतपर बैठकर मैंने बहुत-से लेख लिखे। इन्हींमें था — एक तसवीरके दो पहलू। कहना चाहिए यहाँतक आते-आते मेरी रिपोर्ताज लिखनेकी कला अपनी पूर्णताके निकट आ चुकी थी।

जून १९३४ एक घटनाने जीवनको झकझोर दिया और यह झकझोर एक रिपोर्ताज बन बैठी। निवास एक शानदार कोठीमें पर स्थिति यह कि घरमें खानेके नाम थोड़ी-सी खिचड़ी ही शामके भोजनके लिए। खिचड़ी खाना कोई बुरी बात नहीं पर घरमें एक मेहमान थी यह कह चुके कि जाते समय किरायेके लिए मुझे दो रुपयेकी ज़रूरत होगी। अब समस्या यह कि यदि दो रुपये न दे सकनेके कारण मेहमानको ठहरनेके लिए कहें, तो उसे खिलायें क्या और जाने दें तो दो रुपये कहाँसे दें? दिन-भर मैं किसीसे पाँच रुपये उधार पानेके लिए दौड़-धूप करता रहा और असफलता-के थपेड़े खाता रहा। इन थपेड़ोंके बीच चिन्तन बराबर चलता रहा। इस घटनाका अन्त चमत्कार कि मैंने ज्यों ही थककर प्रयत्न बन्द किये एक चमत्कारके रूपमें मुझे पाँच रुपये मिल गये। इस रिपोर्ताजमें ये प्रयत्न यह चिन्तन और यह चमत्कार साकार हो गया है।

इसे पढ़कर मनस्वी कवि और सफल आलोचक डॉक्टर रामकुमार वर्माने कहा था 'हिन्दी-साहित्यमें इस ढंगकी मैंने एक ही रचना और

पड़ी है और यह है विक्टर ह्यूगोकी फ्रांसी। दूसरे कुछ बन्धुओंने भी इसकी असाधारण प्रशंसा की और इससे निश्चय ही मेरा आत्मविश्वास पुष्ट हुआ — मुझे नये प्रयोग करनेकी प्रेरणा मिली।

यह है फ़रवरी १९३५। केन्द्रीय असेम्बलीका चुनाव हो चुका था और उस दिन उसके प्रसीडेण्टका चुनाव होना था। श्री तसद्दुक अहमद खाँ शेरवानी कांग्रेसी उमीदवार थे। जबर्दस्त संघर्ष था। दो वोटसे कांग्रेस हार गयी। मैं भी उन दिनों दिल्लीमें ही था। खूब घूमा खूब देखा खूब सोचा और बादमें यह सब एक रिपोर्ताजमें उतर आया — दिल्ली यात्राके संस्मरण। स्पष्ट है कि रिपोर्ताज शब्द तब नहीं था और यह भी कि इस विधाकी भिन्नता मनमें थी पर उसके लिए कोई नाम न था। फिर भी इसे लिखकर मैं अभिभूत हो उठा क्योंकि यह भावुकताके सुकुमार स्पर्शोंसे यों अनुरंजित था कि अतीत वर्तमान और भविष्य अपनी रंगीनियोंके साथ एक ही मंचपर थिरक उठे थे। मैं इसे इस दृष्टिसे भी बहुत महत्त्व देता हूँ कि मेरे मनमें रिपोर्ताजका एक सम्पूर्ण चित्र इसी रिपोर्ताजसे बना।

और यह है अप्रैल १९३६ पण्डित जवाहरलाल नेहरूके सभापतित्वमें लखनऊमें कांग्रेसका अधिवेशन — भारतके नये युगका अरुणोदय। इसे मैंने खुली आँखों देखा मदी आँखों देखा आँखों भर-भर देखा और तब लिखा उसपर रिपोर्ताज। यह इतना विस्तृत कि लगभग चौथाई बंध कट जानेपर भी दैनिक प्रताप'के तीन कॉलम पूर्ण हुआ — सूक्ष्म और सजीव स्पर्शोंसे समन्वित। स्वयं पण्डित जवाहरलाल नेहरूने उसके सम्बन्धमें 'प्रताप' सम्पादक पण्डित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'से कहा था 'तुम्हारे प्रतिनिधिसे बढ़कर कुशलदर्शी पत्रकार किसी भाषाके पास नहीं था।

इस प्रकार १९३५–३६ में मेरे रिपोर्ताजका स्वरूप निखर आया था और यह कहना भी सम्भवतः इतिहासके साथ औचित्यका निर्वाह ही माना जायेगा कि यह हिन्दी रिपोर्ताजके स्वरूपका ही निखर आना था।

मेरे लिए उसका व्याकरण है यह कि रिपोर्ताज घटनाका हो दृश्यका हो या उत्सव-मेलेका हो उसे ज्ञान और आनन्दका संयम होना चाहिए। मैं जो कुछ देखता हूँ उसे बहुत विस्तारमें देखता हूँ बहुत गहराईमें देखता हूँ तब चिन्तनमें उसे देखे हुए दृश्यके मर्म फैलाता हूँ पत्निशार्थ फैलाता हूँ और लिखते-लिखते उसे इतिहासकी कड़ी और जीवनकी कड़ीसे इस तरह जोड़ देता हूँ कि एक सम्पूर्ण चित्र बन जाता है। लिखते समय मैं उस दृश्यके साथ इतना तल्लीन रहता हूँ कि मुझे यह भान ही नहीं होता कि मैं इस समय उस मर्मभेदी भावना उत्पन्न घटना या दृश्यके बीच नहीं हूँ। कहूँ देखते समयकी सूक्ष्मता और लिखते समयकी तल्लीनता ही रिपोर्ताजकी सफलता है।

लेखमें घटनाका विवरण होता है स्केचमें रेखाचित्र और संस्मरणमें जीवनका सत्यम पर विवरण चित्र और सत्यमका समन्वय ही रिपोर्ताज है। दूसरे शब्दोंमें रिपोर्टिङ्गमें समाचार होता है, सम्पादकीयमें विचार, पर रिपोर्ताजमें समाचार और विचारका संगम है। शायद यों कहकर मैं और समीप आ जाऊँ कि उसमें दृश्य और चिन्तनका संयम है। यही कारण है कि देखते-देखते रिपोर्ताज हमारे साहित्यमें आदरके स्थानपर आ बैठा है और हमारी पत्रकारिताकी शक्ति बन गया है।

रिपोर्ताज लेखनमें १९४५–४६ के बाद भी मैंने बराबर प्रयोग किये हैं रिपोर्ताज लिखे हैं दूसरे अनेक लेखक बन्धुओंने भी। मेरी दृष्टिमें इस विधाकी कलाकी परिपूर्णता देखेका श्रेय भी लक्ष्मीचन्द्र जैनको प्राप्त है। उनके लिखे रिपोर्ताज – बस पाम्बेसाईको प्रकाशने परा गंगा-जोसफाके संगमपर, असीम आकाशके वियावानम और एक डाकू ! दो चार तीन दृष्टियाँ आदि हिन्दी साहित्यके ऐसे रत्न हैं जो किसी भी भाषा-सरस्वतीके कण्ठहारमें प्रदीप्त हो सकते हैं उनकी दृष्टिकी सूक्ष्मता गहरे अध्ययनकी पृष्ठभूमि भाव-नियोजन और उन्मेष-शालकी क्षमता अनन्य है।

अपने चुने हुए रिपोर्ताज पाठकोंको भेंट करते समय मुझे आशा है कि इस विधाका महत्त्व दिन-दिन बढ़ेगा और लेखक-पाठक इसकी ओर अधिकाधिक आकर्षित होंगे क्योंकि रिपोर्ताज पाठ्यमें अदृश्यको दृश्य बनानेकी जीवन्त कला है।

विकास लिमिटेड सहारनपुर
१५ अगस्त १९६१

—कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

वे सुनते ही नहीं।

बोलो श्री अमर! भारत माताकी जय!!

इन्किलाब जिन्दाबाद!

कौमी नारा वन्दे मातरम्!

१९२ से १९४७ तक चलनेवाले स्वतन्त्रता आन्दोलनमें ये नारे बार बार सुने थे समाये थे। कौन-सा शहर, कस्बा या गाँव है, जिसकी गलियाँ और चौराहे इन नारोंसे नहीं गूँजे? दिलोंकी गहराइयोंसे इस तरह उमड़ते थे ये नारे कि धरती और आसमान उनकी गूँजमें समाकर एक हो जाते थे और तब भारत माताकी एक शानदार तसवीर लोगोंकी आँखोंमें और दिलोंकी उन गहराइयोंमें समा जाती थी।

स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द, योगी अरविन्द, दादा भाई नौरोजी और लोकमान्य तिलकके वाक्य दिलोंकी गहराइयोंमें समायी भारत माताकी उस शानदार तसवीरको पूजनीय बना देते थे। यह तसवीर अतीत की बीते हुए युगकी तसवीर थी। इसके साथ ही आ खड़ी होती एक और तसवीर, जो शानदारकी जगह दयनीय — दुःखभरी होती। यह तसवीर होती आजकी गुलाम भारत माताकी।

दिल ही दिलमें दोनों तसवीरोंकी तुलना होती और तब उस स्थितिमें दुःख भर आता पर यह दुःख एक जीती जागती कौमका दुःख होता, इस लिए इस दुःखमें निराशाका अँधेरा न होता, आशाका प्रकाश होता। इरादों-को चुनौती होती और इस तरह दिल-दिमागमें बलिदानकी भावनाओंकी भावना भर भर उठती और नये जोशके साथ ये नारे फिर धरती और

सम्पूर्ण आदर और प्यार के साथ
अपने बापू को,

जिनका व्यक्तित्व जानने की पहुँच और देखने से
परे था, जिनका लगाव होगा था
जिनसे कभी मेरे साथ बेवफाई नहीं की
और जिनके साथ मैंने कभी गद्दारी नहीं की,
जिनने सदा मेरे हृदय से मेरी परवाह की
और जिनकी परवाह ने मेरी कलम की ताकत को
समाज के मजदूरों के प्रति कर्तव्य भर दिया,
जो सर्वदा मेरा इष्ट रहा
और जिनका मैं सर्वदा आश्रित रहा
जिनके साथ मैं जीता रहा हूँ
और जिनके साथ मैं मृत्यु के बाद भी जीता रहूँगा,
मेरी यह कृति भेंट।

के. एल. 'प्रभात'

आसमानको गूँजा देते

जो बोले सो अभय ! भारत माताकी जय !!

इन्कलाब जिन्दाबाद !

कौमी नारा वन्दे मातरम् !

१५ अगस्त १९४७ को भारत स्वतन्त्र हुआ। इसकेसाथ विभाजनकी पीड़ी-जागती मूरत सामने आयी। भारत माताकी कमनीय और दुःख-भरी तसवीरका अन्त हुआ और अतीतकी उस शानदार तसवीरके साथ चमकदार और शानदार भविष्यके निर्माणकी यात्रा आरम्भ हुई।

इस यात्राको दुनियाने पहले सन्देहकी नजरसे देखा, फिर आशाकी नजरसे और इसके बाद गर्वसे — विश्वासकी नजरसे। सन्देहसे विश्वास तक पहुँचनेमें दुनियाको कई साल लग गये, पर भारत अपनी निर्माण-यात्रा पर चला तो चलता ही।

एक दिन मैं घूमते हुए भारतका दर्शन करनेके लिए घरसे निकल पड़ा और घूमते-घूमते भारतके सीमा क्षेत्रोंमें आ पहुँचा।

पहाड़ ही पर्वत, वन ही वन — एकसे एक सुन्दर दृश्य। देखकर मन भाव-विभोर हो उठा और मैं सोचने लगा, हमारा यह भारत कितना महान् है और इसकी ये सीमाएँ कितनी महत्त्वपूर्ण हैं कि इसकी भूमिमें हुई कई ऐतिहासिकी एक-न-एक कड़ी समायी हुई है। ये ही सीमाएँ हैं जिन्हें लाँघ कर विदेशी आक्रान्ता हमारे देशमें घुसे और ये ही सीमाएँ हैं, जिन्हें लाँघ कर हमारे भिक्षु और प्रचारक गुप्तकी महान् संस्कृतिका सन्देश दूसरे देशोंमें ले गये। दूसरे देशोंको जहाँ अपने आक्रमणोंपर गर्व है, वहाँ भारत-को अपने निष्क्रमणोंका गौरव प्राप्त है। ओह, कितना महान् है हमारे देश का इतिहास !

अजीब-सा वन, अजीब-सा वेश और अजीब-सा रंग-रूप — देह विशाल और चेहरा कुछ परेशान-सा ! देखकर मनमें जिज्ञासा जागी — यह कौन है इस बीहड़ वनमें ?

उस अजीब – अद्भुत जीवने भी मुझे देखा और वह इस तरह मुस-
कराया जैसे मेरा कोई परिचित हो – जाना पहचाना ! मैंने बहुत खाता
पुरानी स्मृतियोंके भण्डारकी भरपूर तलाशियाँ लीं पर किसी भी यादने
साथ न दिया मैं उसे पहचान न पाया और जब पहचाना ही नहीं तो
कहूँ क्या ?

'नहीं पहचान पाये ?" वह और तेजीसे मुसकराया और जब मैंने
सिर हिलाकर इनकार किया तो वह इतने जोरसे हँसा कि मेरी पसलियाँ
भी हिल गयीं पर तभी उसके ठण्डे और मीठे बोल मेरे कानोंमें पड़े
'अरे तुम मुझे पहचान नहीं पाये मैं तो वही हूँ जिसे तुम अभी याद कर
रहे थे !"

मुझे लगा कि यह मायावी जीव मुझे अपनी बातोंमें उलझा रहा है,
इसलिए जरा गरमीसे मैंने कहा "अच्छा मैं क्या याद करता तुम्हें ?"

वह खिलखिलाकर हँस पड़ा और तब बोला 'भाई मेरे, डरो मत
मैं भूत नहीं हूँ जो पुकारे बिना ही आ जाते हुए हों और न वह
शैतान हूँ जो याद करते ही आ गया होता है ।

'फिर कौन हो तुम ?"

"मैं ? अरे भाई मैं तो इतिहास हूँ इतिहास । तुम मुझे अभी याद
कर रहे थे या नहीं ?

'तुम इतिहास हो ? बड़ा अजीब-सा रंग-रूप है तुम्हारा पर खैर,
छोड़ो इन बातोंको और यह बताओ कि तुम इस समय इतने गुप्त क्यों
हो ? क्या कोई खास खबर है ?

'गुप्त ? मैं और गुप्त ? इतिहासके बोल कुछ रूखे-से हो गये – "मैं
गुप्त कहाँ हूँ ? और भाई इतनी अमर-गाथाओंके बीच कोई गुप्त कैसे हो
सकता है ?"

"तुम अमरकथा हो ? क्या है तुम्हारी अमरकथा ?

मेरी अमरकथा ? अरे, वो बहुत भारी है बहुत बड़ी है पर तुम
से सुनोगे ही नहीं !

योगेश उसे यों समझो कि मैं बार-बार कहकर भी दुनियाको अपनी बात समझा नहीं पाता और बात भी कोई अपने मतलबकी नहीं उस दुनियाके ही फायदेकी । मेरा दुःख उस अध्यापक-जैसा है, जो नये-नये वर्षोंमें अपने विद्यार्थियोंको रमकर पाठ पढ़ाता है पर विद्यार्थी उसे समझ नहीं पाता । या यों समझो कि मेरा दुःख उस वैज्ञानिकका है, जिसका फार्मूला सही है, प्रयोगकी विधियाँ सही हैं पर जिसका प्रयोग हर बार असफल रहा है ।

मैंने कहा 'उस अध्यापक और वैज्ञानिकका दुःख समझना सुगम है, पर यह समझना कठिन है कि तुम्हें यह दुःख क्यों हो रहा है ?

'हाँ भाई तुम मेरा दुःख क्यों समझोगे ? तुम भी तो आखिर उसी दुनियाके एक आदमी हो जो लाखों सालोंसे समझकर भी मेरी बात नहीं समझ रही है – इतिहासका स्वर तीखा हो आया – 'दुनियाको प्यार मुहब्बतकी जरूरत थी पर वह आपसकी खींच-तानमें फँसी हुई थी । मैंने उसे एक पाठ पढ़ाया १९१४ से १९१८ तक जिसे तुम पहला बड़ा वार – दुनियाकी लड़ाई – कहते हो । इसमें खूब बम बरसे और दुनियाने विध्वंस का खूब नंगा नाच नाचा । हारनेवाले तो मर ही गये और जीतनेवालोंका हाल हारनेवाला-जैसा हो गया पर प्रश्न तो यह है कि इतने बड़े विध्वंससे दुनियाने क्या सीखा ? क्या दुनियाने युद्धके बदले मित्रताका पाठ पढ़ा ?

तुम भी जानते ही होगे कि इस प्रश्नका उत्तर क्या है ? तब दूसरी लड़ाईके रूपमें वही पाठ मैंने फिर दुनियाको पढ़ाया और मामला एटम बम तक पहुँचा । दुनियामें ऐसा विध्वंस मचा कि उसकी नस-नस टूट गयी और वह हाय-हाय कर उठी पर क्या इससे दुनियाने शान्तिका पाठ पढ़ा ? नहीं पढ़ा तो बताओ तुम्हीं कि यह मेरी भयंकर असफलता है या नहीं ?'

इतिहासका मुख विवर्ण हो उठा बोल भारी हो गया और उसकी आँखें भर आयीं । बड़ी कठिनाईसे अपनेको सँभालकर उसने कहा 'जो

छोड़ो दुनियाकी बात, अपने देशकी तरफ देखो। सालों-साल ह्रासके अनुभव हैं इस देशको। इन अनुभवोंमें चढ़ावके भी अनुभव हैं, उतारके भी; उत्थानके भी, पतनके भी; पर क्या उन अनुभवोंसे कुछ लाभ उठाया गया है? क्या इस प्रश्नपर गहराईसे विचार किया गया है कि किन कारणोंसे देशका उत्थान होता है, किन कारणोंसे पतन? मैं कहता हूँ नहीं और यही मेरी असफलता है।

इतिहासकी आवाजमें बल था, सचाई की तड़प थी। मुझपर उसका प्रभाव पड़ा, फिर भी उसकी गहराईमें उतरनेके लिए मैंने कहा, 'क्या तुम अपनी बात समझानेके लिए कुछ उदाहरण दे सकते हो?'

उसका चेहरा तन गया और आवाज तेजसे भर उठी— 'उदाहरण? उदाहरणोंकी बात मुझसे मत करो। मेरे पास उदाहरणोंके सिवाय और है ही क्या? लो सुनो, उनमेंसे एक रखता हूँ तुम्हारे सामने। इस देशके करोड़ों आदमी पुरुषोत्तम रामका नाम लेकर शान्ति पाते हैं, पर रामका जन्म जिस महान् वंशमें हुआ उसके उत्थान और पतनपर किसीका ध्यान नहीं जाता कि उस वंशके लोग किन कारणोंसे एक महान् साम्राज्यका निर्माण करनेमें सफल हुए और किन कारणोंसे वह महान् साम्राज्य बादमें नष्ट हो गया?

लो इधर ध्यान दो, मैं उसकी एक झाँकी तुम्हें दिखाता हूँ। राजा दिलीपका राज्य बहुत बड़ा नहीं था, पर उसमें शान्ति थी, व्यवस्था थी, सुख था। उनके घरमें महान् प्रतापी पुत्र रघुका जन्म हुआ, जिसने अपने चरित्र, पौरुष और प्रतापकी बदौलत दिग्विजय कर उस राज्यको एक विशाल साम्राज्यमें बदल दिया।

जानते हो इस साम्राज्यकी बात? आह, उसकी कोई उपमा नहीं, किसीसे तुलना नहीं। रघुकी विजय-यात्राओंका एक नक्शा बनाकर यदि उसपर नजर डाली जाये तो साफ दीखेगा कि उनका साम्राज्य इतना विशाल था कि उतना विशाल न मुगल साम्राज्य हो सका, न और ही, न मुझसे हो सका।'

को" साम्राज्य।

महाराजा रघुने इस विशाल साम्राज्यपर अखण्ड राज्य किया और अन्तमें अपने पुत्र अजको उसे सौंप स्वयं संन्यास ले लिया। राजा अज और उनके पुत्र दशरथने इस साम्राज्यकी अच्छी तरह रक्षा की और पुरुषोत्तम रामने तो उसके प्रभावको समुद्र पार तक फैला दिया, पर रामके बाद क्या हुआ?

सारे देशकी जो एकता और शक्ति अयोध्यामें केन्द्रित थी, वह विभिन्नताओंमें बट गयी। कुछ लोग कुशावतीमें चले तो कुछ लवकी राजधानी श्रावस्तीमें। भरतके दो पुत्र थे पुष्कल और तक्ष। पुष्कलने अपनी राजधानी पुष्कलावती बनायी तो तक्ष तक्षशिलामें प्रतिष्ठित हो गये। लक्ष्मणके पुत्र अंगद और चन्द्रकेतुने अपने-अपने एक नये प्रदेशका राज्य स्थापित किया और इस तरह थोड़े समयके भीतर ही रघुकी राजधानी अयोध्या खण्डहर हो गयी। राजधानी ही क्या खण्डहर हुई, रघुका महान् साम्राज्य ही खण्डहर हो गया।

इतिहासने एक लम्बी साँस ली और कुछेक क्षणोंके लिए चुप हो गया, पर फिर ठहरकर यह बोला, 'तुमने समझी इस उदाहरणकी गहराई?' उसकी आवाजमें अब तेजीका करारापन नहीं, दुःखका धीमापन था। अपने प्रश्नका आप ही आप उसने उत्तर दिया, 'यह गहराई है विशाल दृष्टिसे हटकर मनुष्योंकी छोटी दृष्टिसे देखना। विशाल भारतके विशाल हितोंको भूलकर राज्य, प्रान्त, कुल, व्यक्ति, जाति, सम्प्रदाय और भाषा आदिके मोहमें उलझना। यों कहो कि समग्रको भूलकर खण्डमें सोचना, खण्डमें जीना और वंश हो, जाति हो, देश हो या दल हो, जो खण्डमें सोचता है, खण्डमें जीता है, उसे समग्रता — पूर्णता कहाँ मिल सकती है?'

मैंने कहा, 'ठीक है तुम्हारी बात कि खण्डित दृष्टि, खण्डित चिन्तन और खण्डित जीवनसे पूर्णता नहीं मिल सकती।'

इतिहासका स्वर तेज हो उठा — 'मेरी बात तो ठीक है ही, पर

प्रश्न तो यह है कि इन्हीं लोगोंके कारण लम्बी गुलामीके बाद जब अपने शहीदोंके बलिदान और वीरोंके तप-त्यागसे देश स्वतन्त्र हुआ तो क्या तुमने विशाल भारतके विशाल हितोंकी दृष्टिसे देखना-सोचना सीखा या तुम तब भी राज्य प्रान्त गुट व्यक्ति जाति और सम्प्रदायके पचड़ोंमें फँसे हुए हो ? इस प्रश्नका उत्तर दो तुम्हें मेरी असफलताका रहस्य मिल जायेगा।

अब हम स्वतन्त्र हैं

१५ अगस्त १ ४७ को भारत पूर्ण स्वतन्त्र हो गया। मैं यह नहीं समझता कि मुझे कितनी खुशी हुई। सचाई यह है कि १९२ से १९४७ तक के २७ वर्षोंमें मेरे मानसका दृष्टि-बिन्दु भारतकी स्वतन्त्रतापर टिका था और इन वर्षोंमें गुलामीकी पीड़ासे मेरी आत्मा छटपटाया करती थी। जंगलोंके एकान्तमें मैं अकसर वन्दिनी माँका ध्यान कर रोया करता था और जेलके सीखचोंमें बैठे-बैठे भी मैं गुलामीकी असह्य पीड़ाका अनुभव किया करता था। ओह कैसी तड़प थी वह! वह तड़प भाषणोंमें लेखोंमें बात-चीतोंमें और जीवनके हर काम-व्यवहारमें समायी हुई थी। १९२८ २९ में मैंने लिखा था —

कैसी व्यथा की कथा है
हम जीवित और माँ परतन्त्र!
एक बार मिल सब आओ
मर जावें या बनें स्वतन्त्र!
कुछ संशय यदि तब क्या करना
मरना पड़े तदपि क्या शोक!
पारतन्त्र्य के बन्दीगृह से
क्या न भला है यम का लोक!

परतन्त्रताके इस बन्दी-गृहकी दीवारें टूटीं तो जीवन एक अद्भुत नशे से भर उठा और १५ अगस्त १९४७ की रातको पल-भर भी नींद नहीं आयी। नींद तो तब आये जब कोई बिस्तरपर लेटे। कभी मैं प्रार्थना करता कभी पृथ्वीको थपथपाता कभी आसमानको देखता और कभी

गाने लगता।

कभी तो दिन भी आयेगा कि जब आज़ाद हम होंगे!
य अपनी ही ज़मीं होगी व अपना आसमाँ होगा!

ओह कितनी हसरत है शहीद कवि ओमप्रकाशकी इन पंक्तियोंमें! आज यह हसरत पूरी हो गयी थी और मुझे अनुभव हो रहा था कि हमारे शहीद आज आसमानमें नाच-सा रहे हैं। मुझे लग रहा था कि मैं आज बदल गया हूँ कुछ और हो गया हूँ और मेरा रोम-रोम स्वतन्त्रताके गौरवसे भर उठा था।

स्वतन्त्रताके साथ ही आयी साम्प्रदायिक उपद्रवोंकी बाढ़। नीचोंका ममत्व और कमीनोंके बन्धन तो थे ही शरणार्थी बन्धुओंकी दुःखगाथाने कोढ़में खाजका काम किया और जीवन दूभर हो उठा। जो मिलता कहता — 'क्यों साहब यही है आपकी आज़ादी!'

यह कहनेमें भी लोग न चूकते — 'इससे तो यह गुलामी ही अच्छी थी!' और यह भी कि 'कहाँ है आज़ादी!' सचमुच आज़ादी कहीं न थी याने आज़ादी तो सब जगह थी पर उसकी अनुभूति कहीं न थी उसके गौरवका एहसास किसीमें न था। मेरा मन दुःखसे भरा था पर इसका उत्तर मेरे पास न था कि जब देश पूर्ण स्वतन्त्र है तो देशवासी यह अनुभव क्यों नहीं करते कि हम स्वतन्त्र हैं!

मई १९४८ मसूरी।

'चलिए, आपको वुडस्टाकका मेला दिखा लाऊँ।'

आते ही सुहृद्वर श्री गिरीशदत्त पाण्डेयने हड़बड़ी-सी मचा दी तो मैंने पूछा 'अरे भाई, क्या है यह वुडस्टाक?'

पाण्डेयजी बोले 'यह नये ढंगका इण्टरमीडिएट कालेज है। भाई साहब मसूरीका यह कालेज देशमें इतना प्रसिद्ध है कि इसमें नरेश-परिवारके बालक भी शिक्षा पा चुके हैं। आज उन्हींका वार्षिक मेला है।

हम लोग उठ चले और पहुँच गये पुस्तकालय मेलेमें। मेला क्या है क्लासके कमरोंमें दुकानें लगी हैं जिनमें स्कूलमें बनी और बाहरसे आयी चीजें बिक रही हैं। विक्रेता सब अँगरेज हैं — स्कूलके अध्यापक अध्यापिकाएँ और कार्यकर्त्ता। खाने-पीनेकी दुकानोंमें धरमठ है आइसक्रीम है भोजन है, टोस्ट है। विक्रेताओंने अपने देशमें विभिन्नता और विविधताका मनोरंजक संगम कर रखा है। टोस्टवालोंने कागजकी बड़ी किश्तियाँ — टोपियोंकी जगह बाँध रखी हैं और उसपर लिखा हुआ है — हॉट डॉग्स! इनमें एक आदमी बहुत मजेदार है। वह एक अजीब मुद्रा और स्वरमें जोरसे ग्राहकोंको पुकारता है और कभी हिन्दीमें भी कुछ कहता है। वह हँसकर स्वागत करता है हँसकर चीजें देता है और हँसकर पैसे लेता है।

भोजनवालोंने कागजके बड़े-बड़े 'बो' गलेमें बाँधा रखे हैं। कागज पीले हैं और गोरे चेहरोंपर बहुत ही अच्छे लगते हैं। बच्चोंके खिलौने बेचनेवालोंने खजूरकी टोकरियोंको टोपी बना लिया है। हरकमें उमंग है और खिल-खिली हँसी तो अँगरेजोंका जैसे सामूहिक चरित्र ही है।

मैंने वहाँ एक भी अँगरेज ऐसा नहीं देखा जो तबीयतसे समय न हँसा हो या जिसने देखनेवालोंसे चार चुहल न की हो।

अँगरेजोंके साथ ही वहाँ सैकड़ों हिन्दुस्तानी स्त्री-पुरुष भी थे। इनमें नहरवाला तो मैं अकेला ही था — बाकी सब अँगरेजोंके चीज लिये बैठे थे। वे सभी सुखी-समृद्ध थे। उनका सुख और उनकी समृद्धि उनकी वेश भूषा और वहाँ उपस्थितिसे ही स्पष्ट थी। फिर भी उनमें अँगरेजों-सी प्रसन्नता न थी।

अचानक मेरा ध्यान इस बातपर गया कि यहाँ दो जातियोंके मनुष्य हैं। एक वह जिसने अभी-अभी भारतमें अपना राज्य खोया और एक वह जिसने अभी-अभी भारतमें अपना राज्य पाया। मैं दोनोंको गौरसे देख रहा हूँ और सोच रहा हूँ कि न तो खोनेवालेमें दीनता ही है न पानेवालेमें गौरव?

मैं अनुभव कर रहा हूँ कि अँगरेजोंमें दीनता नहीं है पर पानेवालोंका वह

पुराना रूप भी उसमें नहीं है — उसके स्थानमें उसमें अब नागरिकताकी सौम्यता है। परिस्थितियोंके साथ अपनेको सामञ्जस्य करनेमें अंग्रेज बेजोड़ हैं और यही मैं समझ पा रहा हूँ कि नये युगके साथ नयी करवट ले यह योगस्थान बन गया है।

मैं सोच रहा हूँ अपने मनकी वही पुरानी बात कि मेरे देशवासियोंमें स्वतन्त्रताके गौरवकी जागृति अभी क्यों नहीं हुई? बहुत सोचनेपर भी यह प्रश्न मेरे सामने खड़ा रहा पर उसका उत्तर मुझे नहीं मिला और मैं मेला देखकर लौट आया।

कई दिन बाद श्री पाण्डेय फिर उसी झबकड़ीके साथ और आज साथमें श्री ब्रजमोहन गुप्त हम टहलते साथ कि चलो हैकमैनमें। हैकमैन मसूरीका एक शानदार होटल। पिछले वर्षोंमें यह राजाओं नवाबों और बड़ों साहबोंका स्वर्गधाम रहा है।

हमने भी अब इसमें प्रवेश किया। हॉल भरा हुआ था पीछेकी मेज हमें मिली। एक बैरेसे बात हुई और हैकमैनके अतीतकी यह झांकी मिली — हैकमैन अब तो उजड़ गया है बाबूजी! पहले यहाँ ऐसे लोग भी आते थे कि १०-१५ रुपयेका खाना-पिया और १) का नोट फेंका। हमने १५ ८ रुपये तश्तरीमें रखकर पेश किये और एक फर्शी सलाम झुकाया। उन्होंने हमारी तरफ एक बार देखा और इशारा कर दिया — उठा लो! वे हमारे लिये स्वयं उगाला बरसाती बादल जिन्हें समझते थे। यह राजा-नवाबों का हाल था। हमसे नीचे जो लोग आते थे व ५-७ रुपये का खा-पीकर १) का नोट थमाते थे और तश्तरी छूना अपनी किरकिरी मानते थे।

एक दूसरे बैरेने कहा सरकार, जो मसूरी आकर हैकमैनमें न आये वह तमाशबीन छोटा समझा जाता था। तब हैकमैन चीज ही कुछ और थी। अब इसमें क्या रखा है सरकार!

मैंने पूछा "क्यों भाई, अब क्या कमी आ गयी है हैकमैनमें ?"

बोला "एक तो अब ये राजा-नवाब छूमन्तर हो गये हैं। सुना है सरदार पटेलने उनका ऐसा शिकंजा कस दिया है कि मसूरी तो दूर, अब वे अपनी कोठीके बरामदेमें ऊँघते हुए भी झिझकते हैं। दूसरे, कांग्रेसने शराब बन्द कर दी है। शराब ही यहाँकी जान थी—रोशनी थी। वो पैग चलते थे कि परिस्तान धरतीपर उतर आता था।"

पास रुककर मैंने कहा "बाबूजी, मुल्कमें ऐसी मारकाट मची कि मुसलमान एक नहीं आया और सरकार, खान-पीनेमें मुसलमान खूब बटुआ खोलता है। दो सालसे ये शरणार्थी यहाँ आ गये हैं, तो मसूरीमें दिये भी जल रहे हैं, नहीं तो यहाँ घुप्प हो जाता बाबूजी! मसूरी असलमें अँग्रेजोंका मजा घर था। वे बेचारे गये सब, थोड़े-बहुत हैं, उनका भी पत्ता जाने कब कट जाये!"

चलते-चलते मैंने कहा "अब तो यहाँ जो कुछ हैं, ये पंजाबी ही हैं बाबूजी!"

इसी उजड़े हुए हैकमैनमें हम बैठे थे, पीछेकी एक मेजपर, जहाँसे पूरा हॉल हमें दीख रहा था। ये सामने बैठे हैं एक बूढ़े राजा साहब और उनके पास ही एक ऊँचे अफसरकी पत्नी। इनके सामने ही यह एक स्वस्थ और रूपवती सुन्दरी, जिसके अंग-अंगमें है थिरक और शोखी! ये कोई रानी हैं, जिनके राजा हैं अपनी अँग्रेज पत्नीके साथ विलायतमें और ये बिता रही हैं यहाँ विधुर जीवन। वे दूर बैठे हैं एक और अफसर, कुछ अँग्रेज स्त्री-पुरुष और बाकी सब पंजाबी भाई-बहनें!

बैण्डके संयोजकने अँग्रेजीमें घोषणा की कि नाचोंमें स्वर जागे और जोड़ उठे। बूढ़े राजाके साथ वह अफसर-पत्नी और रानी साहबाके साथ उनके वे कोई। इसके साथ यह और उसके साथ वह। नृत्य आरम्भ।

बूढ़ा राजा पुराना खिलाड़ी है और श्रीमतीजी विलायतके नृत्य-घरोंकी

बेगी। खूब जोगी है।

मैं कल्पनाकी सीढ़ी लगा राजा साहबके भीतर उतर गया। दोनों बेठों आपसमें बातें कर रहे थे। बायेंने कहा 'क्या नाच और क्या तमाशा' अब आँखोंमें साफ पलीता सरूर न हो। दायाँ बोला 'देशमें या कुछ हुआ अच्छा हुआ पर जिन्दगीके ये पाँच-सात साल और आरामसे कट जाते!

यह नाच रही हैं रानी! इसके परोंमें थिरक आँखोंमें शोखी और देहमें व्यक्तित्व है। मैं सोच रहा हूँ – यह बेचारी विधवा है या सधवा? देशमें हजारों स्त्रियाँ पतिके नामपर पुरुषोंके खूँटेसे बाँध दी गयी हैं। उन्हें सन्तोष है कि वे विवाहिता हैं और यह सन्तोष ही उनका सौभाग्य सिन्दूर है। साड़ी आभूषण और सुविधाओंमें अपनेको भूली जीवनका घेरा घूम रही है। साड़ी आभूषण और सुविधाके अलावा उनको जो कुछ चाहिए समाजमें वह भी दुर्लभ नहीं। जीवनमें कभी भीतरकी मनको प्यास या कराह जागती भी है तो हिन्दूमैनके दवाखानेमें उसकी गोली सुलभ ही है – फिर विद्रोहकी आग इनमें कैसे जले? क्यों जले? और कौन जलाये?

पतिदेवके लिए भी अपने कामपर पछतानेकी गुंजायश नहीं। उनसे स्वयं देवीजी या गुप्त-सा कोई सुधारक कुछ कहे, तो वे कहते हैं भाई मैं किसलिए रहूँ या बेदाम इनके साथ रहूँ या उनके उन्हें तो कोई कष्ट नहीं है। उनके आराधना तो मैंने पूरा प्रबन्ध कर रखा है।

उनकी दृष्टिमें 'पूरे प्रबन्ध' का अर्थ है – रोटी-कपड़ेका प्रबन्ध। सच ठीक है श्रीमतीजीके लिए विद्रोह-चिन्ता व्यर्थ है और श्रीमान्‌के लिए आत्मचिन्ता। लेकिन पूरा मजा करो क्या रखा है विद्रोहमें और क्या धरा है आत्म-बोधमें?

नृत्य समाप्त हुआ तो कुछ गहरे गान हुए और बहुत बढ़िया डेनका एक हास्य-सा। दर्शक तालियाँ बजा रहे थे जैसे वे जलाकर कोई महान

प्रदर्शन देख रहे हों। डॉ. ब्रजमोहन गुप्तने कहा, 'ये कितने दयनीय हैं कि इस बेहूदगीपर भी हँस रहे हैं।'

मैंने सोचा, मनोरंजन भी मनुष्यकी ऊँचाईका एक मापदण्ड है। अंगरेजोंने अपने स्वार्थके लिए हमारे समाजमें एक ऐसे वर्गका निर्माण किया था, अपनी मानसिक हीनतासे अंगरेजोंके राज्यका अपने देशकी गुलामीका समर्थन करनेमें न चूके! इसी वर्गके हैं ये लोग, जो हँस-हँसकर तालियाँ पीट रहे हैं।

कार्यक्रम समाप्त हुआ। जब मैं हॉलके द्वारसे बाहर आ खुले वातावरणमें, वहाँ मस्तिष्क अपने भीतर सारे समाजको लिये हुए था। उसीमें उभर आया फिर वह पुराना प्रश्न — 'मेरे देशवासियोंमें स्वतन्त्रताके गौरवकी जागृति क्यों नहीं हुई?' एक नया प्रकाश मेरे भीतर आ चला हॉलमैनके प्रकाशपुंजसे। इस प्रकाशमें मैंने देखा — मेरे प्रश्नका उत्तर मेरे सामने है।

देशका एक वह वर्ग है, जो अनुभव करता है कि १५ अगस्त १९४७ को उसका सब कुछ छिन गया है।

देशका एक वह वर्ग है, जो धरतीकी धूलमें लोटता हुआ है और स्वतन्त्रताका प्रकाश जिस तक अभी पहुँच ही नहीं पाया।

एक है हमारे समाजका आकाश, दूसरा धरती। इस धरतीपर इधर स्वतन्त्रताका सूर्य निकला, उधर साम्प्रदायिकताकी बाढ़ आयी। इसी बाढ़के साथ मँहगाई और अभावका कूड़ा-कचरा भी वह आया, जो दिमागोंपर इस तरह जम गया है कि धरती आजकी दलदलमें इस तरह घिर गयी कि अपने स्वरूपको देख ही न सके!

चिन्तनने कहा, प्रश्नका उत्तर स्पष्ट है कि इस परिस्थितिमें कौन है, जो स्वतन्त्रताके गौरवसे दीप्त हो और गुलामीकी सिसकनसे ऊपर उठकर चमक उठे।

प्रश्नका काम-चलाऊ उत्तर मिल गया पर उससे मन हलका न हुआ था। तब आया १५ अगस्त १ ४८ — भारतीय स्वतन्त्रताकी पहली वर्षगाँठ! शासन और जनता दोनोंने एक हो इसे मनाया। छौनी प्रवचन का अवसर था — हजारोंकी भीड़ थी। मैं भीड़में लोगोंके चेहरे देख रहा था। उन्हें एक पुस्तककी तरह पढ़ रहा था। लोग स्वतन्त्रताकी वर्षगाँठ मना रहे थे पर स्वतन्त्रताके गौरवका प्रकाश तो उन चेहरोंपर नहीं था। हृदयोंमें ही आग नहीं है तो मुखड़ोंमें गरमी कहाँसे आये?

एक भाव भीतरसे मुझमें उमड़ उठा — कुछ धुँधला-सा कुछ अधूरा सा। मैंने उसे उलट-पलट कि पकड़ पाऊँ — गुलामी गयी है, आजादी आयी है। हाँ गुलामी गयी है, आजादी आयी है तो फिर लोगोंमें स्वतन्त्रताकी चमक क्यों नहीं है! धुँधलापन खत्म हो चला और यह भावा प्रकाश-भरा प्रश्न — गुलामीको जिन्होंने नहीं पहचाना क्या वे आजादीको पहचानते थे?

मस्तिष्कका द्वार खुल गया — जिन्हें गुलामीकी पीड़ाने कभी पीड़ित नहीं किया उन्हें आजादीका गौरव कैसे उत्फुल्ल कर सकता है?

तब मैंने सोचा — गुलामको गुलामीका दर्द न हो यह अंग्रेजी राजनीतिका करिश्मा था!

आजादको आजादीका गौरव मिले यह स्वतन्त्र राष्ट्रकी राजनीतिका उत्तरदायित्व है!

साम्प्रदायिक उपद्रव शान्त कर दिये गये। गान्धीजीके महान् बलिदान से देशको मनोवैज्ञानिक स्थिरता प्राप्त हुई। सरदार पटेलकी दृढ़तासे भावनगर, जूनागढ़ हैदराबादमें उठे राजनैतिक तूफान शान्त कर दिये गये और राज्योंको भारतमें मिलाकर अखण्ड भारतकी स्थापना हुई। वीरवर करिअप्पाके नेतृत्वमें कश्मीरमें पाकिस्तानियोंको कुचल दिया गया। नेहरू की लोकप्रियतासे विश्वमें भारतका मान बढ़ा। नये संविधानसे भारत

गणराज्य-स्थापनाकी घोषणा की। पहले आम-चुनाव शान्तिसे हो गये और व्यवस्थित शासन आरम्भ हुआ। पंचवर्षीय योजनाके माध्यमसे देशका नवनिर्माण आरम्भ हो गया। विश्वके महान् राष्ट्रोंकी ओरसे सहायता मिलने लगी। कण्ट्रोल हटा दिया गया — चीजोंकी सुलभता बढ़ी जीवन सुगम हुआ और लोगोंके मनमें स्वतन्त्रताकी चेतनाका आभास झलकने लगा। पाकिस्तानकी नित नूतन शासकीय अत्याचारियोंके बीचमें भारतकी उन्नति और भी स्पष्टतासे भारतवासी देख सके और इससे उनके मनमें स्वतन्त्रताकी चमक-रेखाएँ और भी गहरी हो उठीं। विश्वके महान् पुरुषों-के आगमनसे इस गहराईमें एक नयी चमक आयी। इसी बीच विभिन्न राज्य सरकारोंने कुछ कानून बनाये। समाजके साधारण जनोंने न्यायालय में उन कानूनोंको ललकारा और फलस्वरूप वे सरकारें हार गयीं और नागरिक जीत गये। इसने लोगोंके मनमें स्वतन्त्रताका विश्वास पैदा किया और लोग सोचने लगे — अब हम स्वतन्त्र हैं।

जून १९६ मसूरी।

घूमने निकला तो सूरज पहाड़ोंसे ऊपर आ ही रहा था और उसका बहुत सुहावना था। पैर थकने हो गये और हल्की ठण्डी था निकला उस छोर तक जहाँ नीचे गाँव बसे हैं। दो पोचवाले कमरपर बुचक लिये चले आ रहे थे। मैं भी उनके साथ हो लिया और बातें होने लगीं। कोई आध मील तक घरेलू बातें करनेके बाद मैंने उन्हें टटोलकर कहा — 'भैया शहरी लोगोंकी बात है, मजे हैं पर मेरे-तुम्हारे-जैसे लोगोंको तो स्वराज्य-का कुछ फायदा पहुँचा नहीं।

अरे साहब सुनते ही वह भला बूढ़ाका तमक उठा — आपको नहीं पहुँचा होगा सोराजका फायदा हमें तो बहुत पहुँचा है।

मैंने नाराजी-भरे स्वरमें कहा 'क्या फायदा पहुँचा है? जैसा पहले था वैसा अब है।

दूधवाला गरम हो उठा – "आपके शहरमें होगा वैसाका-वैसा हमारे शहरमें तो जहाँ अँगरेजोंका कुत्ता नहीं आ सकता था वहाँ हम जाकर शानसे बैठते हैं। पहले इनकेके पास-पास भी डरे-डरे-से चलते थे। अब बीच सड़कमें चलते हैं, जैसे राजा नवाब हों।

"मैंने अपनेको बदला और उसके स्वरमें स्वर मिलाया – 'हाँ भाई जी आपकी यह बात तो ठीक है डर तो अब किसीका नहीं रहा अँगरेज ही अब तो बचकर चलता है।

वे अपनी राह चले गये मैं एक बेंचपर बैठ गया। समयकी बात तभी एक घटना हो गयी। सामनेकी बेंचपर एक अपटूडेट व्यक्ति बैठे थे। पीछेसे आकर एक मैले कपड़ोंका पहाड़ी युवक उसी बेंचपर बैठ गया। उन्हें यह अच्छा नहीं लगा और झिड़ककर उन्होंने कहा 'ऐ, उधर बैठो!

युवकपर झिड़कीका कोई असर नहीं पड़ा और बेरुखीसे उसने कहा क्या? यहाँ तो काफी जगह पड़ी है आप फैलकर बैठ जाइए।

वे सज्जन नाराज हुए, 'अकड़ता है! उधर बैठ!

युवकपर जरा भी असर नहीं पड़ा। उसने अपने जूते भी बेंचपर ही रख लिये और तरारेसे कहा 'साहबजी आजादी सारे हिन्दुस्तानको मिली है कुछ आपको ही नहीं।"

वे सज्जन उठकर चले गये और मैं सोचने लगा – १५ अगस्त १ ४७ को आजादी देशके नेताओंके हाथमें आयी थी १९४८ में जिससे कुछ लोग अस्त-व्यस्त थे और कुछ अपरिचित १९५१-५२ में जिसका स्पर्शमात्र देशके भावनाशील और बौद्धिक लोगोंने अनुभव किया था १९५४-५५ में जिसके प्रति लोगोंके मनमें विश्वासकी रेखाएँ खिंची थीं १९६ में मैं उस आजादीके गौरवका एहसास लोगोंमें देख रहा हूँ। लोग अब अनुभव करते हैं कि हम स्वतन्त्र हैं और हमें स्वतन्त्रताके अधिकार प्राप्त हैं।

सूरज खिल रहा था। मीठी धूप बरस रही थी। मैं उसमें नहाता सा चला आ रहा था। आ गया बाजार भीड़ आना-जाना आवाजें — गति। मैंने देखा — सड़कपर जगह-जगह मूँगफलीके छिलके पड़े थे। पान की पीकोंसे सड़क खराब थी। एक धक्का-सा लगा और तब मनमें उगा यह विचार — मेरे देशवासियोंमें स्वतन्त्र मानवके अधिकारकी भावना तो जाग उठी है, पर स्वतन्त्र मानवके कर्तव्यकी भावना नहीं जागी। जिस दिन वह जागेगी हमारी स्वतन्त्रताका अनुष्ठान उसी दिन पूर्ण होगा।

०

लोहेके स्टैच्यू बोल उठे !

आदमीके चेहरेपर एक मुख है। मुखमें वाणी है जो हृदय और मस्तिष्कके भावोंको भाषाका माध्यम देती है, पर इस वाणीके अतिरिक्त भी मनुष्यके चेहरेकी एक वाणी है, जो बिना भाषाके बोलती है।

मनुष्यको देखते ही हमपर एक छाप पड़ती है। उसे हमारी भीतरी आँखें देखती हैं और मनके कान सुनते हैं यह बिना भाषाकी खामोश वाणी है।

यह मैंने कही आदमी–मनुष्य–इन्सानकी बात पर एक अजीब बात बताऊँ कि कुछ विशिष्ट भवनों-मकानोंमें द्वार तो होते ही हैं मुख भी होता है और वाणी भी। मैंने दिल्लीके लाल किले और नयी दिल्लीके संसद् भवनमें ऐसे चेहरे देखे हैं और उनकी खामोश आवाज मेरे मनके कानोंने सुनी है।

उस दिन कलकत्तेकी रेड रोडसे गुजरा तो देखता हूँ, यह सामने है एक ओर एक विशाल भवन – भव्य संगमरमरसे निर्मित। द्वारके साथ उसका भी एक चेहरा है चेहरेमें मुख है मुखमें मूक वाणी है।

उसे मुखको मैं अपने सूक्ष्म कानोंमें सिमट आया। वे खामोश बोल कुछ यों थे – 'मैं साम्राज्ञी विक्टोरियाका स्मारक हूँ – विक्टोरिया मेमोरियल – और मुझमें ताजमहलका सौन्दर्य एवं जुमा-मस्जिदकी विशालता है।

मेरी आँखोंने निर्निमेष हो एक बार फिर उसे अपने अंकमें समेट लिया पर अन्तश्चेतनाकी अनुभूतिके बोल कुछ यों थे – 'सौन्दर्य और विशालतामें सन्देह नहीं पर तुममें ताजमहल एवं जुमा-मस्जिदकी वह

सजीव आन्तरिकता नहीं जो मौलोंकी राह चाँदनी-सी मानसके आँगनमें भर जाती है।

और मैं इस भवनके निकट हो निहारने लगा।

बायाँ हाथ है कूल्हेपर और दायें हाथसे पकड़े है वह चोगा। नस नसमें उसकी तनाव है — वीणाके तारका तनाव नहीं जो उँगलीका स्पर्श पाते ही झंकृत हो वातावरणको एक मीठे — मुलायम स्पन्दनसे भर देता है; हाँ धनुषकी प्रत्यंचाका तनाव जो भृकुटीकी चिकोट पाते ही टंकोरसे वातावरणको एक पैने आतंकसे भर देता है — यह रूपका अहंकारका तनाव जो अपनी विजयके उल्लाससे नहीं दूसरेकी पराजयके उपहाससे पनपता है।

विक्टोरिया मेमोरियलके सामने मैदानमें खड़ा है यह लार्ड कर्जनका स्टैच्यू। ओह, इस तरहकी अकड़ कि आदमीसे अपना ही आपा उठाये न उठे और थामे न थमे!

इस दर्पकी पृष्ठ-भूमि क्या है?

जिस छोटे ऊँचे चबूतरेपर कर्जन खड़ा है उसके चार कोनोंपर चार छोटी लौह-प्रतिमाएँ खड़ी हैं — पैनल।

एकमें रानी खड़ी है और दो आदमी कपड़ा बेच-खरीद रहे हैं — एक ग्राहक एक विक्रेता।

दूसरेमें रानी अकाल-पीड़ितोंको भोजन दे रही है।

तीसरेमें एक बालक तख्ती-पुस्तक लिये खड़ा है और एक माता फूलोंकी टोकरी लिये।

चौथेमें एक फावड़ेवाला पुरुष है, खेतमें पानी सींचती एक नारी है, धान्य लिये बालक है।

क्या कहते हैं ये चार चित्र?

ये कहते हैं विक्टोरियाके राज्यमें अविकसित भारतको व्यापार-व्यवहार

मिला, अकालकी भूखमें सहायता मिली, महलोंके रूपमें कृषिको विकास मिला और शिक्षा मिली।

यह भारतके लिए अँगरेजी राज्यके राष्ट्र-निर्माणका प्रचार हुआ। तो क्या कमलके रूपमें इसी निर्माणकी चेतना है?

और यह क्या है? स्वर्ण-दीप्त कमलके पैरों तले ऊँचे चबूतरेके चारों ओर सीढ़ीपर निर्मित यह किस भवनका चित्र है?

ओह, यह तो ताजमहलका चित्र है — भारतीय स्थापत्यके गौरव विश्वके एक अनुपम आश्चर्य ताजमहलका!

हाँ ताजमहलका, पर उसका यह चित्रांकन यहाँ क्यों किया गया है? क्या केवल सौन्दर्य-अंकनके लिए? अपने प्रश्नसे अपनी जिज्ञासामें मैं खो गया और तब मैंने फिर एक बार कमलकी आँखोंमें झाँका। उनसे चमकती उन आँखोंमें कुछ यों था — 'हाँ, एक आँसू भारतीयको यहीं समझना चाहिए!

मेरे चैतन्यने व्यंग्यकी इस चुभनमें चारों ओर हाथ फैलाये तो लगा कि मेरी चेतनको कहीं बिजलीके नंगे तारसे छू गयी है — ओह कमलके इस रूपका रहस्य ताजमहलके इसी चित्रमें है!!!

बुद्धिने चौंककर पूछा, 'क्या है यह रहस्य?'

मेरा चेतन बिजलीके उस झनझनाते धक्केसे उबर अब बोधकी स्थिति-में था। बोधकी स्थिति जहाँ रहस्य उद्घोषणाकी काव्य भाषा — मानो या जैसे — की झिलमिलमें आँख-मिचौनी नहीं खेलता, तथ्य और यथार्थकी स्पष्टतामें खुली धूप-सा खिल उठता है।

भारतकी आत्मामें, भारतीय जीवनमें एक बाँकपन है और बाँकपन बन्धनके विरुद्ध कब कैसा विद्रोह कर बैठे, यह कोई नहीं जानता, तो अँगरेज राजनीतिके लिए आवश्यक हुआ कि आत्मगौरवका यह बाँकपन चारों ओरसे बिना जाने ऐसी चोटें खाये कि लड़खड़ाकर ढह पड़े।

ताजमहल भारतकी विशिष्टता है और उसके आत्मगौरवकी गुम्मजीके

अन्धकारमें भी एक दीप्ति देता है। यह दीप्ति उस काँपनकी स्फुरणा देती है। तब बनाया गया यह विक्टोरिया मेमोरियल जो ताजमहलके गौरवकी दीप्तिके दीपकका हवाकी झपकों-सी टिमे-टिमे करता है

कुछ तू ही नहीं है एक ताजमहल कि शरद्-पूर्णिमाकी चाँदनीमें सौन्दर्यका हीरा-सा चमके। देख मैं भी हूँ सफेद संगमर्मरका ही एक महान् निर्माण तेरेसे ऊँचा और विशाल !!

फिर तेरे भीतर है क्या? सिवाय दो कब्रोंके जिनमें बड़े मुरदों-के दो रूखे कंकाल अपने अतीतको रोया करते हैं। इधर देख मेरे भीतर है एकसे एक सुन्दर कलाकृतियोंका संग्रह। हूँ बड़ा आया है ताजमहलका बच्चा !!!

और मैं देख रहा हूँ विक्टोरिया मेमोरियलके निर्माता लॉर्ड कर्जनके रोम-रोममें उसके तनमनमें इसी ललकारका दर्प कसा हुआ है!

बुद्धि उचककर पूछती है, क्या कर्जन अपने लक्ष्यको पा सका? क्या विक्टोरिया मेमोरियलने ताजमहलकी दीप्तिका दीपक झपझपाया?

प्रश्न उमड़ते रहे पग आगे बढ़ते रहे। कर्जन और सिंहद्वारके बीच एक ऊँचे मंचपर ऊँचे सिंहासनपर आसीन हैं ये महारानी विक्टोरिया। उच्चता महत्त्व और शालीनतासे वातावरण और मुद्रा इस तरह ओत-प्रोत कि मैं भूल गया हूँ कर्जनके दर्पको और विक्टोरियाको बस मेरे मनके चारों ओर है एक वृद्धत्व और हाँ एक ममतामय महान् मातृत्व।

माँ प्रणाम!

स्वरहीन शब्दोंकी यह श्रद्धांजलि जैसे बिना दिये ही मैंने विक्टोरिया-को अर्पित कर दी। तब कहूँ, मुझसे अर्पित हो गयी।

मैं देख रहा हूँ महारानी भौचक जिज्ञासा और अपार आश्चर्यसे अभिभूत हैं— 'अच्छा! तुम मेरा सम्मान करते हो?'

'हाँ निश्चय ही यह तो मेरे देशकी सभ्यता है माँ!

कहते-कहते ही मैं अनुभव कर रहा हूँ कि मेरे हृदयकी तरल ममता तरल हो उनके अन्तर तक पहुँच गयी है।

मैं सुन रहा हूँ उनके कटे-झिझकते-से स्वर मुझ तक आ रहे हैं — 'तब तो तुम्हें दुख होगा कि मेरे वंशजोंका राज्य अब यहाँ नहीं रहा ?'

'माँ वह तो एक अन्याय था और अन्यायके निवारणमें किसी न्याय वादीको भला दुख क्यों हो ? फिर उस अन्यायका निवारण अपने हाथों कर आपके वंशजोंने तो विश्वके इतिहासमें यश कमाया है।' मैंने कहा।

'ठीक है तुम्हारी बात विजेताकी उदारताका अपने देशका वैसा उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है।' वे बोलीं और उभर आ रहे अवसादके कोहरेको चीरती-सी नयी प्रश्नम उभरी — 'मेरा यह स्मारक तो शानदार है ?'

भारतका संस्कार है, मुर्दोंकी बात रखना तो मुँहसे अनायास कहा — 'हाँ' और हृदयके तारतम्यमें 'हाँ' का अनुनासिक जब तक तैर-सा गया तो मुझ तक उभर आया उनका प्रश्न — 'फिर इसे ताजमहल-जैसा महत्त्व क्यों नहीं मिला ?'

उफ् !

मेरे कलेजेमें एक सुई-सी चुभ गयी — ओह, दपदीप्त कल्पनाके पैरों तले एक लौहपटपर उभरे ताजमहलके चित्र और विक्टोरियाके इस प्रश्न-की चीत्कार भीतर ही भीतर आपसमें गुँथी है!

चुभन पैनी थी गहरी थी तो मेरे स्वर आवेशका हल्का-सा स्पर्श पा ही गये — 'ताजमहल तो हृदयोंके प्रेमकी ज्योति है जो भिन्न व्यक्तियोंकी अभिन्नताका प्रतीक यह मेमोरियल यह आपका स्मारक कहाँ है महारानी ? यह तो एक सुनियोजित मूर्खताकी प्रदर्शनी है!

आवेशका हल्का स्पर्श गहरा हो गया — 'ताजमहल चाहे दिनमें बना हो या बारह वर्षोंमें क्षण-क्षण उसके निर्माताकी भावना रही कि ऐसा बने यह ताज कि युग-युगों तक मेरी प्रियतमाकी आत्माको शान्ति

मिले। इसके विरुद्ध मेमोरियल चाहे जितनेमें बना हो या चाहे वर्षोंमें इसके निर्माताकी मन-मन यह भावना रही कि ऐसा बने यह मेमोरियल कि शासकके दिलों भी भारतीयोंके आत्मगौरवको दीप्ति देनेवाले उस ताजमहलका पानी उतर जाये – कमसे कम सौन्दर्य और स्थापत्यके क्षेत्रमें उसका एकत्व उसकी मोनोपोली तो टूट ही जाये।

महारानी ताजमहल प्यारभरी ताजका स्मारक है क्योंकि उसके कष्टसे बना था – उसकी एक-एक ईंट उसका ध्यान करके रखी गयी थी पर मेमोरियलके निर्माण-क्रममें आप कहाँ हैं? फिर कहाँका स्मारक और किसका स्मारक? कहा नहीं मैंने कि यह तो सुनियोजित धूर्तताकी एक प्रदर्शनी है।

मुझे लगा कि निर्माण-वास्तुका कमाल विक्टोरियाके मातम तक मगन हो लिपट गया है। यह दृश्य इतना दयनीय है कि देखा न जाये। इधर-उधर करनेको मैंने आँखें फेरी तो देखा – विक्टोरियाके दोनों ओर खड़े हैं दो बन्दूकधारी सिपाही जिनमें एक की बन्दूक किसीने बलपूर्वक तोड़ दी है।

मेरे बायें हाथ है विशाल कैथोलिक चर्च। मैं सुन रहा हूँ यह चर्च कुछ कह रहा है। क्या कह रहा है यह चर्च? मेरे अनुयायियोंकी विजय यात्राका व्याकरण यह है कि पहले बाइबिल हाथमें लिये पादरी पहुँचे और तब कन्धोंपर बन्दूक ताने सिपाही। आज भारतमें हमारे सिपाहीकी बन्दूक टूट गयी है पर मैं अपना काम अब भी किये जा रहा हूँ और लो सच बता दूँ तुम्हें अब पादरी और सिपाही दोनोंका काम मेरे ही हाथोंमें है।

विचारोंसे मन इतना भर गया है कि कुछ नयी बात सुनने और सोचनेको जी नहीं चाहता पर आँख तो अपना काम कर ही रही है।

इसी नक्शेपर बायें हाथ है वह एक ऊँचा स्टैच्यू – घोड़ेपर सवार किचनर। वाह बारीक क्या नक्श है! अगला बायाँ पैर उठाये वह अचल

हिनहिनाहटसे वातावरणको भर रहा है जैसे अपने सवारसे कह रहा हो कि शत्रु हो या भाई नहीं ही या नाता चिन्ता क्या है, तुम जरा लगाम ढीली तो करो पर जो बाहुलके गढ़े छूटे वह क्या सवार ? सवार लगाम को थामे हाथों साथे अपने लक्ष्यको देख रहा है।

किचनरके ठीक सामने घोड़ेपर सवार मिण्टो हैं। यह घोड़ा अपना बायाँ पैर आगे बढ़ाये कदमोंको उठाता है, पर मिण्टोकी खींची लगाममें जरा ठहरा तो जाये।

इसी सड़कपर जरा और आगे बायें हाथ है घोड़ेपर सवार रावर्टस। घोड़ा मुँह बाये पूरी तेज़ीमें और सवार वर्दीमें चलता हुआ। इसके ठीक सामने अपने घोड़ेपर सवार लैन्सडाउन अपनी प्रभावशाली मुद्रामें और इसके नीचे एक छोटा स्टैच्यू, जिसमें दो बालक हाथ मिला रहे हैं।

मुझे याद आ गया पुराने युगका एक पुलिस कप्तान रॉबर्ट्स। उसका एक खानसामा था मुसलमान और दूसरा हिन्दू। दोनोंमें थी दोनों लगाव– तुनकमिजाज जब-तब आपसमें गुत्थम-गुत्था। कप्तान जब सुने कि वे जूझ रहे हैं तो दौड़कर बाहर आये और दोनोंके कन्धे थपथपाकर कहे – शाबाश तुम तुम एक तो हम मस्त !

बालकोंके स्टैच्यू देखकर मैं सोच रहा हूँ कि 'तुम-तुम' तो एक हुए नहीं पर 'हम' और उसके भाई-बन्धु लन्दन पहुँच ही गये। भारतकी स्वतन्त्रता इतिहासका कितना बड़ा चमत्कार है !

चमत्कार? विश्व भी कितना अद्भुत है ? मैं देख रहा हूँ किचनर मिण्टो रावर्ट्स और लैन्सडाउन आकर विक्टोरियाके पास खड़े हो गये हैं। अरे, यही नहीं ये तो देश-भरके अंग्रेजोंके प्रमुख स्टैच्यू यहीं आ गये हैं – कई किंग कई गवर्नर जनरल कई कमाण्डर इन-चीफ और कई दूसरे योद्धा – सबके सब शानदार और बाँके !

उन्हें देखकर मुझे एक बात सूझ आयी और मैं उनसे कह उठा –

आपकी जातिका शासन अब इस देशमें नहीं रहा और हम स्वतन्त्र हैं कि जो चाहें करें, पर आपको देखकर मुझे अपने देशकी सहिष्णुता और उदारतापर गर्व हो रहा है कि आज भी आप लोग अपने-अपने स्थानपर अपने पूर्व गौरव और गर्वकी मुद्राओंमें ज्यों-के-त्यों सम्मानपूर्वक खड़े हैं।

मैं अनुभव कर रहा हूँ कि मेरी बात सुनकर वे सब गहरे विषादमें डूब गये हैं और तब सुनाई पड़ी निश्वासोंमें कांपती-डूबती-सी यह आवाज—'ठीक है, हम आज भी अपने-अपने स्थानपर अपने पूर्व गौरव और गर्व-की मुद्राओंमें ज्यों-के-त्यों सम्मानपूर्वक खड़े हैं पर भाग्यकी इस विडम्बना-को हम क्या करें कि पहले हम अपने आत्मगौरव और राष्ट्रीय गर्वके चिह्न थे और अब हम अपने आत्मगौरव और राष्ट्रीय गर्वके व्यंग्य-चित्र हैं।'

यह शायद मुझे एकरसकी आवाज थी।

रॉबर्ट नर्सिङ् होममें !

कल तक जिनका अतिथि था आज उनका परिचारक हो गया क्योंकि मेरी आतिथेया अचानक रोगकी चपेटमें आ गयीं और उन्हें इन्दौरके रॉबर्ट नर्सिङ् होममें जाना पड़ा ।

यह है सितम्बर १९५१ !

रोगका आघात पूरे वेगमें परिणाम कँपकँपाता और वातावरण चिन्ता-से घिरा घेरा कि हम सब सुस्त । तभी मैंने चौंककर देखा कि अपने विशिष्ट धवल वेषसे आच्छादित एक नारी कमरेमें आ गयी है ।

देह उनकी कोई पैंतालीस बसन्त देखी बस हिम-श्वेत पर आनको वयकी रेखाओंमें अनुरंजित कुछ लम्बा और सुता-सा ।

'लम्बा मुँह अच्छा नहीं लगता बीमारके पास लम्बा मुँह नहीं ।' आते ही उन्होंने कहा । भाषा सुघरी उच्चारण साफ और स्वर आदेशका पर आदेश न अधिनायकका न अधिकारीका पूर्णतया माँका जिसका आरम्भ होता है झिड़कीमें और अन्त गोदमें ।

हाँ यह माँ ही थीं होमकी अध्यक्षा मदर टरेसा जन्मभूमि जिनकी स्पेन और कर्मभूमि भारत । उमरकी तरुणाईसे उनके इस क्षण तक रोगियोंकी सेवामें लवलीन वही काम वही धाम वही राग वही आग और बस वही धुनि !

उन्होंने रोगीके लोना ललाट कपाल अपने चाँदनी-चर्चित हाथोंसे थपथपाये तो उनके शुभ अधरोंपर चौड़ीसी एक रेखा खिंच आयी और मुझे लगा कि वातावरणका बोझ कुछ कम हो गया ।

तभी एक तड़ाक और हमारा डॉक्टर कमरेके भीतर। मदरने उसे देखते ही कहा 'डॉक्टर तुम्हारा बीमार हँस रहा है।'

"हाँ मदर! तुम हँसी बिखेरती जो हो। डॉक्टरने अपनी आग चिन्तन अनुभव सो एक ही वाक्यमें गूँथ दिये।

मैंने भावनासे अभिभूत हो सोचा — जो बिना प्रसव किये ही माँ बन सकती है वही तीस रुपये मासिकके मौन-श्रमपर बीस बरसके दिन और रात सेवामें लगा सकती है और वही पीड़ितोंके तड़पते जीवनमें हँसी बिखेर सकती है।

तीसरे पहरका समय थर्मामीटर हाथमें लिये वह आयी मदर टेरेसा और उसके साथ एक नवयुवती उसी विशिष्ट भवन वेषमें। गौर और आकर्षक। हाँ गौर और आकर्षक पर उसके स्वरूपका चित्रण करनेमें ये दोनों ही शब्द असफल। यों कहकर उसके आस-पास जा पाऊँ कि शायद चाँदनीको धूपमें घोलकर ब्रह्माने उसका निर्माण किया हो। रूप और स्वरूपका एक दैवी लोभा-सी वह लड़की। नाम उसका क्रिस्ट हेरन और जन्मभूमि जर्मनी।

क्रूसकी पुत्री मदर टेरेसा और जर्मनीकी पुत्रिका क्रिस्ट हेरन एक साथ एक रूप एक ध्येय एक रस।

'तुम्हारा देश महान् है, जो युद्धके देवता हिटलरको भी जन्म दे सकता है और तुम्हारे-जैसी सेवाधीन बालिकाको भी। मैंने उससे कहा तो रोषसे दीप्त हो वह स्तब्ध हो गयी और अपना दाहिना पैर पृथ्वीपर वेगसे ठोककर बोली — 'बस-बस।

वह दूसरे कमरेमें चली गयी तो मैंने मदर टेरेसाको टटोला 'आप इस जर्मन लड़कीके साथ प्यारसे रहती हैं?'

बोलीं 'हाँ वह भी ईश्वरके लिए काम करती है और मैं भी फिर प्यार क्यों न हो?' मैंने नश्तर घुमाया — 'पर आपको हिटलरने पद दलित किया था यह आप कैसे भूल सकती हैं?'

मस्टर टेंग का चुम्बन गहरी पर मदरका कलेजा उससे अछूता रहा। बोली 'हिटलर बुरा था उसने लड़ाई छेड़ी पर उससे इस लड़कीका घर भी वह गया और मेरा भी हम दोनों एक।

'हम दोनों एक' मदर टेरेसाने ममता इतने गहरे डूबकर कहा कि जैसे मैं उनसे उनकी लड़कीको छीन रहा था और उन्होंने सहज ही बीचमें मुझे चारों खाने चित मारा।

मदर चली गयी मैं सोचता रहा मनुष्य-मनुष्यके बीच मनुष्यने ही कितनी दीवारें खड़ी की हैं – ऊँची दीवारें मजबूत फौलादी दीवारें, मूर्खताकी दीवारें, धर्म-विश्वासकी दीवारें जाति-वर्णकी दीवारें, कितनी मजबूत कितनी ममत्व पर कितनी अजेय।

क्रिस्ट हेरके पिता जर्मनीमें एक कालेजके प्रिंसिपल हैं और उसने अभी पाँच वर्षोंके लिए ही संयास व्रत लिया है।

रोगिणीके गहरे काले बाल देखकर उसने कहा 'तुम्हारे बाल मेरे पिताके हैं।' कहा कि वह स्मृतियोंमें खो-सी गयी।

मुझे लगा कि मैं ही क्रिस्ट हेर हूँ। अपने माता-पितासे हजारों मील दूर एक अजनबी देशमें अकेली खोयी डरी-सी और भरी आँखें भर आयी।

लड़की मेरे आँसुओंमें डूब-डूब गयी और किनारा पानेको उसने जल्दीसे उन्हें अपने रूमालमें पोंछ दिया। उसकी सदा हँसती आँखें सम हो गरम हो आयीं पर जरा भी नम नहीं। मैंने पूछा "घरसे चलते समय रोयी थी तुम?' उसका भोला उत्तर था 'हाँ मैं बहुत रोयी थी।

फटी आँखों कुछ देर मैं उसे देखता रहा तब कुछ बिस्किट उसे भेंट दिये। बोली 'धन्यवाद थैंक यू डांके शू।' वह अक्सर हिन्दी-अंग्रेजी जर्मन भाषाओंके शब्द मिलाकर बोलती है।

हम सब हँस पड़े और वह हँसती-हँसती भाग गयी।

मदर टेरेसा बातोंकी मूडमें थीं। मैंने उनके हृदय-मानसमें और गहराईसे झाँका — "मदर, घरसे आनेके बाद फिर आप घर नहीं गयीं? कभी मिलने-जुलने भी नहीं।" काम अपना काम कर चुके थे बातोंको अपना काम करना था पर मदरने उसकी राह मोड़ दी और तब मैंने सुनी यह कहानी

कई वर्ष हुए फ्रान्समें मिशन-घरके पुत्र-पुत्रियोंका एक सम्मेलन हुआ। भारतकी दो मदर भी प्रतिनिधि होकर उस सम्मेलनमें गयीं। वे फ्रान्सकी ही थीं उनके माता-पिता फ्रान्समें ही थे। उन्हें पता था कि बरसों बाद हमारी पुत्रियाँ आ रही हैं।

दोनों माताएँ अपनी पुत्रियोंका स्वागत करने बंदरगाहपर आयीं पर विचित्र बात यह हुई कि वे दोनों अपनी पुत्रियोंको पहचान न पायीं और आपसमें कहती रहीं कि तुम्हारी बेटी कौन-सी है। अन्तमें उनका नाम पूछा और तब गले मिलीं।

कहानी पूरी हुई, तो कई प्रश्न उठे पर मदर टेरेसा उनके उठते-न उठते भाग गयीं। निश्चय ही उन दोनों अनपहचानी पुत्रियोंमें-से एक वे स्वयं थीं।

बस इतना ही एक दिन मैं उनसे और कहला सका

'घरसे बहुत चिट्ठी आती है तो मैं यहाँके किसी स्थानका फ़ोटो भेज देती हूँ।'

रोग पूरे उभारपर था रोगीके लिए असह्य। मदर टेरेसाने कहा 'तुम्हारे लिए आज विनती करूँगी।' उनका चेहरा उस समय करुणासे महान प्रोज्ज्वलित हो उठा था।

रोगीने कहा कुछ भी करना मदर!

मदरके स्वरमें मिश्री ही मिश्री पर मिश्री कुनैनकी भी जो मिठास तो तुरन्त देती है पर कुनैन तुरन्त नहीं और अगला प्रदीप हो तो मसूड़े तक छील देती है। ऐसी मां उस उनके लिए करूँगी जिस सबसे अधिक

कष्ट होगा ! जैसे हजार वाल्टका बल्ब मेरी आँखोंमें कौंध गया ।

मैंने बहुतोंको रूपसे प्यारे देखा था, बहुतोंको मनसे और गुणोंसे भी बहुतोंको प्यारे देखा था, पर मानवताके आँगनमें समर्पण और प्राप्तिका यह अद्भुत सौम्य स्वरूप आज अपनी ही आँखों देखा कि कोई अपनी पीड़ासे किसीको पाये और किसीका उत्सर्ग सदा किसीकी पीड़ाके लिए ही सुरक्षित रहे ।

ऊपरके बरामदेमें खड़े-खड़े मैंने एक जादूकी पुड़िया देखी — बोली-चालती जादूकी पुड़िया । आदमियोंको मक्खी बनानेवाला कामरूपका जादू नहीं, मक्खियोंको आदमी बनानेवाला जीवनका जादू — होमकी सबसे बुढ़िया मदर मार्गरेट ।

कद इतना नाटा कि उन्हें बड़ी गुड़िया कहा जा सके, पर उनकी चालमें यौवनकी चुस्ती, उत्साहमें फुर्ती और व्यवहारमें मस्ती । हँसी उनकी यों कि मोतियोंकी बोरी खुल पड़ी और काम यों कि मशीन मात मान । भारतमें चालीस वर्षोंसे सेवामें रमकीन जैसे और कुछ उन्हें जीवनमें अब चाहना भी तो नहीं ।

ऑपरेशनके लिए एक रोगी आया । ऐश-आराममें पला जीवन । कष्टकी बेचारेको आदत, सहनेका उसे क्या पता, पर कष्ट क्या पात्रकी क्षमता देख कर आता है ? 'मदर, मर जाऊँगा ।' उसने बिलख कर कहा । वातावरण चीत्कारकी विह्वलतासे भर गया, पर बूढ़ी मदरकी हँसीके दीपकने लपकी तक नहीं खायी ।

बोलीं 'कुछ नहीं कुछ नहीं, आज है एवरीथिंग (सब कुछ) कल समथिंग (कुछ-कुछ) और बस तब नथिंग (कुछ नहीं) ।' और वे इतने जोरसे खिलखिलाकर हँसीं कि आस-पास कोई होता तो झेंप जाता ।

एक रोगी उन्होंने देखा — चिन्ताके पलंगमें उठ-उखड़ती रोगिणी । जोरसे चुटकियाँ बजाकर वे चिल्लायीं — चिअरी चिअरी । यह है उनका की दवा की घटी ।

यह अनुभव कितना चमत्कारी है कि यहाँ जो जितनी अधिक दुखी है, वह उतनी ही अधिक उत्फुल्ल है, मुसकानमयी है। यह किस दीपककी जोत है? यायावर जीवनकी? त्यागवर्ती जीवनकी! सेवा-निरत जीवनकी! अपने जिज्ञासाओंके साथ एकाग्र जीवनकी! भाषाके भेद रहे हैं, रहेंगे भी, पर यह जोत विश्वकी सर्वोत्तम जोत है।

सिस्टर ग्रिस्ट हैरल्डका तबादला हो गया — अब वह शामीके मौस-सेवा-केन्द्रमें काम करेगी। ओह, इस जंगली जीवनमें यह कस्तूरिका पर कस्तूरिका तो अपने सौरभमें इतनी लीन है कि उसे स्वयंके अतिरिक्त और कुछ दीखता ही नहीं, सूझता ही नहीं।

वह हम लोगोंसे मिलने आयी — हँसती, खिलती, बिखरती और चहकती। यहाँसे जानेका उसे विषाद नहीं, हाँ एक नयी जगह देखनेका चाव उसके रोम-रोममें, पर मुझे उसका जाना कचोट-सा रहा था। वह दूसरे रोगियोंसे मिलने चली गयी।

इधर-उधर आते-जाते वह दो-तीन बार कमरेके बाहरसे निकली, पर फिर एक बार भी उसने उधर नहीं झाँका। मैंने अपनेसे कहा, 'कोई उसमें आग उगले, उसे फिक्रमें नहीं उलझना है।'

और तब सिस्टर ग्रिस्ट हैरल्डका सच यह है कि निरन्तर-अटल-आनन्द निर्माण-निर्लिप्त-निर्द्वन्द्व जीवन पूरी तरह मेरे मानस-चक्षुओंमें समा गया और मैंने फिर बार-बार कहा — सिस्टर ग्रिस्ट हैरल्ड, हम भारतवासी गीताका जन्म स्थान बने हुए, पर तुम उस जीवनमें से कृतार्थ हुईं।

तभी मेरे भीतर एक सोचाव उभर आया — हमारे समाजने नारीको देवत्वमें आरूढ़ कर निर्जीव कर डाला, वह पत्थर-सदृश देवतानी होकर ही रह गयी, न सिस्टर बन पायी न मदर। हमने युग-युगसे नारी को हमारे बहन-बेटियों को अभिशाप तक पहुँचा दिया और बस और बस!

क्यों पहले कामिनी है, तब रमणी, तब नारी और तब माँ, पर वे न कामिनी, न रमणी, न नारी, बस माँ और माँ ही माँ — ऐसी हैं सब

कुछ और मेरी नहीं कुछ भी। तभी तो इनके हाथमें यह सिमस्ता है इनके मुंहे सम्पर्कमें भी यह निरसमता है कि कामनाका कीटाणु भीतर नहीं खोल पाता।

हम डेढ़ सदी पश्चिमके सम्पर्कमें रहे और जो कुछ हमने पाया उसका पुलिन्दा है साहब और स्वीमिंग है मेमसाहबा – न मदर, न फादर ? तभी तो हमारी पूँजी रह गयी बाहरी उन्मुक्तता साफ़ कहें तो मर्यादा-हीनता और एक विशेष प्रकारकी रूप-सज्जा और हम ले न पाये आन्तरिक उन्मुक्तता 'स्व' का स्वच्छासमन कर सदा जागती पर-वृत्ति सदम-वृत्ति सम्य-गति न चुकनवाले और न रुकनवाले चरण।

और फिर ये मदर, ये सिस्टर यह मिसनरी भावना ! इस जीवन व्यापी संयमका प्रेरणा केन्द्र क्या है ?

इस प्रश्नका केन्द्र है – ईसा !

अचानक एक आँधी-सी मुझमें उठी और उसने मुझे झकझोर दिया – जब दूसरे महापुरुषोंकी प्रेरणा कुछ ही विराम मन्द पड़ गयी तो ईसाके जीवनकी प्रेरणा हजारों वर्षोंके बाद भी इतनी सजीव कैसे है ? हमारे यहाँ विवेकानन्दने इस भावनाकी गहराईको अनुभव किया था और राम कृष्ण मिशनके रूपमें जमाया था।

अपने डेंगपर उन्होंने अपने साधकोंसे – गान्धीके शब्दोंमें गया था – मूर्तियोंके सामने बत्तियाँ ही दुमदुमाते रहोगे या जनताके जीवनमें यहाँ भगवान्‌की बाँसुरी बज रही है जानोगे ?

मुझे लगा कि यह प्रश्न राष्ट्रके सारे वातावरणमें आज भी भर रहा है। शायनासिका वीणाके स्वरों-सा मधुर और मधुर।

०

एक दिनकी बात

ज्योतिने मुँह बनाकर कहा 'काम तो है दीजिए कुछ हमें। इस दिन आठ आनेका आसरा था सो वह भी खत्म हो गया। अब क्या भूख हड़ताल करनी पड़ेगी यहाँ?'

मनपर बड़ी चोट पड़ी। सान्त्वनाके स्वरमें मैंने कहा 'नहीं भाई भूख हड़ताल क्यों करनी पड़ेगी। मैं अभी कुछ इन्तजाम करता हूँ।"

यह जून १९३४ की बात है। तब 'विकास' साप्ताहिकको निकलते लगभग एक साल ही हुआ था। बाबूजी (श्री विश्वम्भरप्रसाद शर्मा संचालक 'विकास', वर्तमान सम्पादक – 'आलोक' नागपुर) किसी कामसे बम्बई गये थे और कार्यालयमें मैं अकेला ही था। ज्योति था हमारा चपरासी और उसे रुपयेकी जरूरत थी पर मैं हूँ विकास-सम्पादक कि मेरे पास एक कानी कौड़ी भी न थी।

बहुत सोचकर मैंने बिलोंकी किताब पलटी। कई विज्ञापन-दाताओंसे रुपया अभी आना था। यों ही मैं जोड़ गया। १५७) होते थे पर इन्हें मैं क्या करूँ? मुझे तो इस समय ५) चाहिए और ये १५७) किसी दिन आनेवाले थे! मन बड़ा भारी हो गया। लेटकर सोचने लगा क्या करूँ?

अचानक ध्यान आया। बम्बई जाते समय बाबूजीने कहा था 'कचहरीसे कोट फीसके २५) वसूल करने हैं कर लेना। बिल मैं भेज चुका हूँ। मगज सोयी आशा जाग उठी। उठा दूसरी बिल-बुक उठाकर देखी। सचमुच २५) लेने थे। ५) कलक्टरीसे और २०) दीवानीसे। चेहरेपर प्रसन्नताकी एक रेखा-सी खिंच गयी। कपड़े पहने और कचहरी

चला। तांगेके लिए पैसे न थे पैदल पहुँचा पर मनमें उल्लास था शरीर में स्फूर्ति — लौटते समय जेबमें २५) होंगे। ठाटसे तांगेमें बैठकर आऊँगा। सवारियाँ नहीं होंगी तो पूरा तांगा कर लेंगा आज ही क्या है ?

कचहरीके नाजिर साहब बैठे कागज उलट रहे थे। मेरी बात उन्होंने सुनी और ५) मेरे हाथके किये। मैं खजानी पहुँचा। यहाँके नाजिर साहब बड़े कानूनी आदमी निकले। बोले 'माफ कीजिए पण्डितजी हमारे यहाँ बाबूजीका नाम दर्ज है, इसलिए रुपया तो उन्हींके दस्तखतसे मिल सकता है।

'मैं अभी कचहरीसे रुपये लाया हूँ। आप मुझे जानते ही हैं। बाबू जी बम्बई गये हैं और उनके लौटनेका अभी कुछ पता नहीं। मैंने कहा तो बोले पण्डितजी हरेक कचहरीके अपने कायदे हैं। मेरे लिए मजबूरी है वरना फौरन आपके हुक्मकी तामील करता।

मैंने कहा 'कोई उपाय बताइए कि मुझे रुपये मिल सकें। बोले 'आप बाबूजीकी एक चिट्ठी मँगा दीजिए कि इन्हें रुपये दे दिए जायें बस मैं तुरन्त आपको रुपये दे दूँगा। बातको समाप्त करते हुए बोले 'और कोई सेवा बताइए। अब मैं और क्या सेवा बताता। फिर भी मैं प्रसन्न ही था कि पाँच मेरी जेबमें थे। आते ही बारह आनेका तार बाबूजीको दिया एक रुपया ज्योतिषीको और सवा तीन श्रीमतीजीको !

चौथे दिन कार्यालयमें बैठा लेख देख रहा था कि श्रीमतीजीकी आवाज कानोंमें पड़ी 'घरमें न आटा है, न लकड़ी। त्यौहारके रुपये लड़कीको अभाग भेजने हैं। लाओ कुछ रुपये दो। जेबमें एक भी पैसा न था। झुंझलाई-सी आवाजमें मुँहसे निकला "कल तो दिये ही थे रुपये। आज फिर सिरपर सवार हो।

"कल क्यों कभी आज ही दिये हों! कई दिन हुए तीन रुपल्लियाँ

दी थीं वे खर्च हो गयीं। जब रोज मेहमान आये रहते हैं, तो खर्च होगा ही।

'अभी खर्च तो होता है पर कहीं रुपया हो भी।

'नहीं है तो रहने दो। कुछ मेरा ही पेट सबसे बड़ा थोड़े है। झुनककर वे भीतर जाने लगीं। मैंने उन्हें सँभालते हुए कहा 'देखो मैं डाककी इन्तजार कर रहा हूँ। बाबूजीकी चिट्ठी आ गयी तो रुपये मिल ही जायेंगे। नहीं तो कोई और इन्तजाम करूँगा।

तभी ध्यानसिंह डाक सामने रख दी। रोज पहले अखबारोंपर नजर जाती थी आज चिट्ठियाँ देखीं। बाबूजीका लिफाफा था। लोका कचहरी के नाम चिट्ठी थी। मैंने कहा 'लो तुम खीज रही थीं। आ गया बाबूजीका खत। अब रुपया ही रुपया लो। जरा-सी देरमें साथ छोड़ने लगती हो।

अखबार देखकर कचहरी गया। आज मालाकी बात नहीं विश्वास का दिन था—दाम दिखाते ही रुपया मिल जायेगा। आखिर साहब अदालती मौसिम कागज नजर रहे थे। दाम देखकर बोले बस अब ठीक है। उस दिन परिस्थितियों आपकी मालगार तो गुजरा हुआ पर माफ कीजिए काम कायदम ही ठीक हुआ है।

[illegible] मैंने कहा नहीं जी इसमें मालगारकी क्या बात [illegible] ऐसी बात है।

[illegible] फिर भी बड़ी मजबूरी है पण्डितजी! कहकर मालिकोंने [illegible] उसके बाद मैंने पूछा तो क्या कुछ देर [illegible]
[illegible] बात [illegible] पण्डितजी आज [illegible] काम न हो [illegible] बहुत मुश्किल [illegible] है। [illegible]
[illegible] जिनकी लड़कियाँ हैं आज १८ [illegible]

रखा था। पेटी देखी नोट नहीं था। होता ही कहाँसे पर बैंककी चैक-बुक पड़ी थी। मैं बैंकके बारेमें कुछ भी न जानता था। झपटा हुआ बैंक पहुँचा। 'क्यों साहब 'विकास'के हिसाबमें-से मुझे कुछ रुपया मिल सकता है?' यह मेरा प्रश्न था। 'जी नहीं रुपया पत्रका है और आप उसके सम्पादक हैं पर नामसे बाबूजीके हैं इसलिए रुपया उन्हींके दस्तखतोंसे निकल सकता है।' यह बाबूका उत्तर था। लौट आया पर मनमें शान्ति कहाँ?

ठीक दो बजे हैं और रातमें आठ बजे महमानजी तशरीफ ले आयेंगे। दो रुपये! कहाँसे दूँगा उन्हें? कलकी रोटीका प्रबन्ध नहीं पर यह तो अपनी बात है। एक-दो दिन भूखा भी रहा जा सकता है पर ये दो रुपये? इनका मैं क्या करूँ?

लेकिन सहारा दिया इसमें परेशानीकी क्या बात है। कह देना अलमारीकी ताली नहीं मिलती कल चले जाइएगा। मन कुछ हलका हुआ। मैं यों ही घबरा गया। मुझे यह जरा-सी बात न सूझी और दुनिया-भरके कुलाबे मिला गया। मैंने एक लम्बी साँस ली पर दूसरे ही क्षण एक स्मृतिने दिमागको हिला दिया। तुम रुपये न दोगे वे महाशय नहीं ठहर जायेंगे पर यहाँ आयेंगे क्या? सारी शान मिट्टीमें मिल जायेगी। इन्हें साफ जवाब दे दूँ, पर फल तो उसका भी नहीं है। मैं रो पड़ा। यहाँ 'फ्रामर सिवेद' की पहुँच नहीं वहाँ आँसुओंकी दो बूँदें काम कर जाती हैं। मन कुछ हल्का हुआ। मैं उठकर कमरेमें घूमने लगा। सामने दीवार पर एक सम्पन्न मित्रका फोटो लगा था। इनसे पाँच रुपये क्यों न माँग लूँ? संकोच सामने आया पर इसमें संकोचकी क्या बात? १४ तारीखको उनके रुपये वापस कर दूँगा। साहसने सहारा दिया विश्वासने प्रोत्साहन। चिट्ठी लिखकर रतनको दी। मनका भार हल्का हुआ। बड़ी मुश्किलसे यह बला टली। मैं तो घबरा ही गया था। अब रतन पाँच लायेगा। दो

तो हम महाराजको दूँगा और तीन श्रीमतीजीको। परसोंको १४ है ही। २) रुपय आयेंगे ५) फौरन उनके मेज दूँगा। संसारमें आत्मीय आदमीको दस तरहका काम पड़ता है।

रुक्का अब आ ही रहा होगा। साइकिलकी घण्टी बजी और यह आ गया। बड़ा फुर्तीला है कम्बख्त मिनिटोंमें काम करता है, पर इसमें देरीकी बात ही क्या थी। गया रुपये लिये और चला आया। उसने एक लिफाफा मुझे दिया। लिफाफा! अरे रुपये कहाँ हैं? कैसे रुपये? ध्यान आया – मैं अधीरतामें कितना उतावला हो गया हूँ। भला वे पाँच रुपये हाथमें देते लिफाफेमें नोट भेजा होगा। यह है बड़प्पनकी बात। बड़े घरोंके लड़के भी बड़े ही होते हैं और फिर भैया तो एक आदर्श युवक है। उत्सुकताके मारसे मैंने लिफाफा खोला पर इसमें नोट कहाँ है? यह तो केवल एक पत्र है। क्या रुपये नहीं दिये? यह अविश्वास! इन रईसों-में मनुष्यता तो है ही नहीं। पत्रमें लिखा है, मेरी स्थिति तो आप जानते ही हैं और स्टेट एकाउण्टमें इस समय पाँच आने हैं। भगवान् करें यह भी न रहें।

तो फिर? अरे जाने भी दो। इस तरह चिन्तामें तो हार्ट-फेल हो सकता है। नहीं है तो न सही। मैं रुपयोंके लिए मर थोड़े ही जाऊँगा। चढ़ीमें तीन बजे और महाशयजीकी छाया मेरे सामने आकर खड़ी हो गयी। 'लाओ दो रुपये! पाँच घण्टे बाद यह स्थिति आनेवाली है। इसे कैसे टालूँ मेरे भगवान्! कहीं चला जाऊँ। पीछे बेचारे रो-झींककर चले जायेंगे। बादमें क्षमा-याचनाकी एक चिट्ठी लिख दूँगा। यही ठीक है पर कहाँ चला जाऊँ? बिना पैसेकी यात्राका उदाहरण है तो सामने। फिर मैं कहीं चला भी गया और मैं महाराज कल गये नहीं तो श्रीमती-जी क्या करेंगी? इन मुसीबतोंमें तो सारा जमघटा भी पर्याप्त नहीं है। फिर मैं क्या करूँ चक्करनेम तो और और भी अटकाने ही वाली है। जासूसी सोचें। अभी तीन बजे हैं और कुल दो घण्टेकी बात। उतना बड़ा शहर

रही है। यह तो सुई चारके पास पहुँच रही है। कहीं बड़ी देर तो नहीं है, पर होगी भी तो कितनी दस मिनिट बीस मिनिट, आध घण्टा। फिर इससे मुझे क्या सन्तोष।

मैं कितना मूर्ख हूँ चिन्तामें घुला जा रहा हूँ। पण्डितजी क्या इनकार कर देंगे। न कोई रईस नहीं हैं जो हृदयहीन हों। और फिर बनिया बनिया ब्राह्मण ब्राह्मण। आर्यसमाज कितना ही बैकवर है जन्मके संस्कार कहीं जा सकते हैं? रतन अभीतक नहीं आया। सम्भव है कहीं गये हों या श्रीमतीजी न हों और ताली उनके पास हो। हिन्दुस्तानी औरतोंको भी ताली गलेमें बाँधे रखनेकी एक बीमारी है। अरे, एक खूँटी नियत है या ताक ताली वहाँ रखी है जिसे जरूरत हो ले ले पर नहीं ताली जबतक गलेमें न बाँधी जाये चैन ही नहीं पड़ती। ताला रसोईघरके जनेऊकी तरह बन्धा और एक खूबसूरत-सी ताली पर वह इनके लिए सौभाग्य चिह्न से भी अधिक प्रिय है।। मूर्ख है और क्या?

यह भी सम्भव है कि रुपये न देनेपर ही अड़ रही हों — "रोज तुम्हारे यार-दोस्त ही आते रहते हैं। पाँच-सात रुपये पड़े हैं उन्हें भी दे दो और हो जाओ फकीर। रुपयेका इस कदर मोह है कि हद नहीं। देशका दुर्भाग्य है कि उसका आधा भाग एक दम बुद्धू है।

आज यह घड़ी फूट क्यों नहीं जाती! कमबख्त दौड़ी जा रही है जैसे रेलमें महाशयजीकी जगह इसे ही बैठना हो। अभी देखा तो साढ़े तीन बजे थे यह चार भी बज गये। इस घड़ीको बेच क्यों न दूँ। शैतानने परेशान कर दिया आज। इसका भी पाप कट जायेगा और मेरा भी पर अभी तो अमानत है। बाबूजी आकर क्या कहेंगे। तो और क्या बेचूँ? मेरे पास एक अँगूठी थी उसे मुन्नीको दे दिया पर मुन्नी बेचारीका क्या दोष? उसे वह दी ही क्यों गयी? वह तो बालक है, उसे चीजकी कीमतका क्या पता? बड़ी लापरवाह औरत है। इस सारे झंझटसे बच जाता। ताला और कुण्डे-से बेच जाता। चीज और है ही किस कामके

यह बात है। रतन सुस्त होता जा रहा है। दिन-भरकी मेहनत वसूल हो गयी बेचारेकी। आज इसे जलेबी खिलाऊँगा। एक रुपया मुन जायगा और दो मुख्तारको भेंट। बाकीके लिए श्रीमतीजी हैं ही। प्रोग्राम पूरा हुआ। चलो जान बची किस चक्करपर पड़ गया था आज।

'बाबूजी बैठ रहे थे।' रतनने प्रसन्नतासे कहा। कचहरीसे आये होंगे अभी। थक जाते हैं बेचारे। अनपढ़ लोग समझते हैं कि ये शहरके बाबू दोनों समय मुफ्तकी तोड़ते हैं। इन मोटुओंको भला क्या पता कि एक ही महीनेमें नस-नसका कचूमर निकल जाता है।

उन्होंने कहा है— मेरा माथा ठनका 'कहा है' क्या मतलब? क्या रुपये नहीं दिये? —कि इस समय मुन्शीजी नहीं हैं वे आ जायें तो रुपये मैं फ़ौरन भेज दूँगा। मुन्शीजी हैं या जमाई? मुझे किसी मुकदमेकी मिसल थोड़े ही देखनी है, जो मुन्शीजीके बस्तेमें हो। भला इतना बड़ा वकील उसके घरमें पाँच रुपये नहीं। अगर उसके लड़केको हैजा हो जाये तो क्या मुन्शीजी ही आकर डॉक्टर बुलायेंगे। कैसे मनुष्य हैं ये लोग। झूठ बोलते-बोलते झूठ इनकी आत्मामें रम गया है। क्या घुट्टी ही है पट्ठेने। लोगोंको लड़ाते-लड़ाते इन वकीलोंका हृदय पत्थर हो जाता है और मक्कारी तो इनकी जन्मघुट्टी ही है। ऊपरसे देखो तो शिष्टाचारके पुतले पर भीतरसे पूरे पशु। भगवान् दुश्मनको भी न फँसाये इनके चक्कर में। ठीक है दुश्मनको भी न फँसाये पर मैं तो फँस रहा हूँ। मैं कैसे निकलूँ इस चक्करसे।

यह लो साढ़े पाँच भी बज गये। इस घड़ीको बन्द कर दूँ तो कुछ देर दिमागको चैन मिले। जो यह देखो इस घड़ीमें पटककर तोड़ डालने के सिवा इसे बन्द करनेका कोई तरीका ही नहीं रखा। अलामपर ता रिपीट कण्टीन्यु और साइलेण्टके तीन-तीन चिटें चिपका दिये पर घड़ीको बन्द करनेकी बात ही कारीगरके दिमागमें नहीं आयी। जैसे इसे बन्द करनेकी कभी किसीको जरूरत ही न पड़ेगी। अरे छी बातें हैं। आदमी

बीमार है। टिक-टिक बुरी लगती है। लगा करे। हाँ जाय यह परेशान पर घड़ी बन्द नहीं हो सकती।

ज्यादा बुरा लगे तो उठाकर बाहर बरामदेमें रख दो। चोर ले जाये घड़ी बनानेवालेकी बलासे। उसकी तो एक और बिक जायेगी पर चोर ही कैसे ले जाये? रास्ते-भर टिक-टिक करके यह चुड़िया पुलिसका काम करती रहेगी। घड़ी चुप हो तो आदमी उसे अपनी पाकेटमें ही लपेट ले। किसीको क्या पता कोई क्या लिये जा रहा है। हर चौकपर सिपाही खड़ा रहता है पर खड़ा रहे। दुनिया अपना-अपना सामान लिये जा रही है। यही क्या कोई नयी बात है? उसे क्या पता पाकेटमें क्या है? होगा कोई गोभीका फूल और सस्ता होगा यह बेचारा अपने खेतसे। पुलिस ठेकेदार है दुनियाकी पर घड़ी बोल जो रही है। चोरको भी चौकस होकर चलना पड़ता है और इधर-उधर आँख फेरना ही चोरकी मौत है। सिपाहीको फौरन शक हो जाता है — 'क्या लिये जाता है बे यह रहम!' एक कड़कदार आवाज और चोरकी होश गुम। 'पी···ई ई···ई··' एक लम्बी सिसिक और चोर गिरफ्तार। चला भाई जेलखाना।

जेलखाना पूरा नरक है। मैं तो आजकी ही कमाईमें खूब देख आया हूँ पूरा नरक है। मनुष्य अपने मुर्दैया स्वभावके कारण वहाँ भी हँसता है गाता है पर यह तो मनुष्यके स्वभावकी एक विशेषता है। और विशेषता न हो तो वह क्या करे। रो-राकर मर जाये बेचारा! वहाँ धीरज दिलानेवाली माँ थोड़े ही बैठी है, जो पुचकार कर रोटी खिला देगी। रामका नाम भी सहूलियतका तो वहाँके अधिकारियोंमें नाम नहीं। दो पैरके जानवर समझिए आप उन्हें। कदियाम ऐसे भी हैं जो अपनी रोटी दूसरेको दे दें पर अभी कैदी हैं अफसर अफसर। मेरा बस चले तो एक महीनेके लिए कैदियोंको अफसर और अफसरोंको कैदी बना दूँ। पट्ठोंकी नानी मर जाय और तब जानें कि पीर किसे कहते हैं?

लोग कहते हैं विज्ञान बड़ी उन्नति कर रहा है। मगर कोई पूछे

उनसे कि विज्ञानने क्या उन्नति की कि घड़ी तो बनाकर रख दी पर यह सिर्फ चल सकती है बन्द हो ही नहीं सकती। अभिमन्युकी तरह व्यूहमें घुस तो जाओ तुम और निकालेगी मौत! सूझ नहीं है कम्बख्तोंमें और क्या? भला घड़ी बन्द हो सकती तो यह क्यों पकड़ा जाता बेचारा।

'यह चोर था और उसका पकड़ा जाना ही ठीक है।' हाँ साहब यह चोर था और उसका पकड़ा जाना ही ठीक है पर उसे चोर बनाया किसने? किसी दिन यह भी भला आदमी होगा जरूर होगा ही पर आज यह चोर है। इसका उत्तरदायित्व किसपर है? इसका उत्तरदायित्व समाजकी उस व्यवस्थापर है, जिसने उसे चोरीके लिए मजबूर किया। दुनियामें कोई आदमी खुशीसे चोर नहीं बनना चाहता। चोरी राजनीति की नौकरी नहीं और न रायबहादुरीका खिताब है कि उसके लिए कोई उत्कण्ठित हो। सारे समाजका धन चूसकर कुछ लोग धनपति बन बैठे हैं। मेरी रोटी तुम हड़प जाओ। अब मैं उसे मांगूं तो भिखारी और ले लूं, तो चोर। धर्मशास्त्रने घोषणा की कि चोर दण्डनीय है और न्यायके नामपर जेलखाने खुले। न्याय क्या अन्याय है यह!

बेचारेके सुकुमार बच्चे भूखसे बिलबिला रहे होंगे और फटे-से कपड़े पहने उनकी घरवाली प्रतीक्षा कर रही होगी पर जब उसे पता चलेगा कि इन बच्चोंका बाप पकड़ा गया और गया जेल एक सालको तो बेचारीकी दुनिया घूम जायेगी। यह जेलमें पीसेगा चक्की और खायेगा घुड़कियाँ उस जेलरकी जिसकी सूरत और रूप तो आदमीका है पर भीतरसे जो आदमियतसे लाखों कोस दूर है।

मैं भी कैसा भावुक हूँ। बिना किसी नींवके घर बना डालता हूँ। चोरकी बातें सोचता रहा पर मेरी हालत तो इस समय उस चोरसे भी बुरी है। उसे रोटियोंकी तो फिक्र नहीं है, उसके घर कोई मेहमान तो आकर न ठहरता होगा और मेहमान भी ऐसा कि मरे न मांचा ले।

छह बज गये। जेलखाना भी छह बजे ही बन्द होने लगता है।

बैरकमें बैठा बेचारा अपनी स्त्रीको याद करके रोता होगा। वह तो रो-पीट कर अपने दिन काट ही लेगा पर यह बेचारी क्या करे? मेहनत मजूरी करती और क्या पर जवान औरतका मजदूरी करना भी एक आफ्त है। मजदूरी उसकी जो मालिकके हाथ अपनी आबरू बेच। नहीं तो रात-दिन गाली खाये – हर तरह अपमानित हो। प्रलोभनोंका जाल बेचारी पार भी कर जाये तो चौबीसों घन्टेके अपमानको कैसे पिये! पति जेलमें पड़ा है और बच्चे भूखे हैं। मालिक या ठेकेदार हर समय पीछे पड़ रहते हैं। एक तरफ खुशामदका जाता है और दूसरा गालियोंका! 'बरतनोंमें मिट्टी लगी रहती है। आधाव सुस्ती ही नहीं हरामकी तनखाह लेना चाहती है'। वह क्या करे। बच्चोंको भूखा मर जाने दे या भी मर जाये या आपा लुट जाने दे। एक तरफ मातृत्व है, एक तरफ स्त्रीत्व। दोनों प्यारे। फिर यह खाई कैसे पार हो?

एक काक कागज उनके उड़नेसे उड़कर मुझपर आ पड़ा। काश वह नोट होता! उठाकर पढ़ने लगा। युवक संघके पिछले उत्सवका नोटिस था। नीचे मन्त्रीके रूपमें मेरा और सभापतिके रूपमें थी रामप्रतापका नाम था। बड़े होनहार युवक हैं। धन-सम्पन्न हैं और शिक्षित भी। अब से संघमें आये जान डाल दी। जब मिलते हैं, तो लिपट जाते हैं। उस दिन उत्सवमें मेरी तारीफोंके पुल बाँध दिये। बड़े ही मिलनसार हैं। इतने ही पाँच रुपये क्यों न मँगा लूँ। खाली चला नक जायेगी। घर भी पास ही है। रतन जायेगा और आ जायेगा।

ले रतन यह एक चिट्ठी और है। तेज आँधीकी तरह जाना और तूफानकी तरह आना। चिट्ठीमें लिखा था – 'भाई, बीमारीसे अभी उठा हूँ शरीर बहुत कमजोर है। मजूरी बन्द पड़ी है। इसी समय पाँच रुपयेकी जरूरत है। अन्तिम आशाके रूपमें आपको कष्ट दे रहा हूँ। १४ ता॰को यह रुपये वापस कर दूँगा। यों ही पत्र लिखा। इसकी क्या जरूरत थी? वैसे ही रतन जाता और रुपये लेकर लौट आता। पाँच

रुपयेके लिए क्या चिट्ठी-पत्री ! यह तो समयकी ही बात थी कि आज यों परेशान होना पड़ा। नहीं तो अभिमानकी बात नहीं पाँच-पाँच रुपये तो कई बार अपरिचितोंके लिए केवल मनुष्यताकी पुकारपर खड़े-खड़े खर्च कर दिये हैं।

स्टेशनपर उस दिन वे कितने परेशान थे। उनका बटुआ खो गया था और वे संकोचमें डूबे इधर-उधर अपनी करुण-दृष्टि घुमा रहे थे। स्वयं पूछकर उनको स्थितिका पता लगाया और चुपकेसे पाँचका नोट उन्हें भेंट कर दिया। अपनी-अपनी आदत संकोचवश उनके घरका पता भी नहीं पूछा। क्या कहेंगे बेचारे! पाँच रुपल्लीके लिए पता पूछ रहा है। कुछ बात भी हो पाँच रुपयेकी! कई बार सज्जनता और दीनताकी आड़में ठगा भी गया हूँ, पर पैसा कहाँ नहीं है। दुरुपयोग किस चीजका नहीं हुआ? कपटी संसारने परमात्माकी चौपड़ बिछानेमें भी दरेग नहीं की।

पर एक बात है पत्र लिखना भी अच्छा ही हुआ। शामका समय है चार मित्र बैठे होंगे। रतन जाकर कहता सबको खबर होती। पता नहीं कौन कैसा आदमी बैठा है। किसीके सामने क्या बात कहनी है, क्या नहीं कहाँकी बात कहाँ जा पड़े। प्राइवेट बातोंके लिए सदा पत्र लिखना ही ठीक होता है। मेहमान साहब कहीं घूमने गये हैं। आते ही होंगे। दो रुपये देकर उन्हें विदा करूँगा। भला इन्हें सूझी भी क्या कि लाठी उठायी और चल दिये। चाहिए तो यह कि चार पैसे ज्यादा लेकर आदमी दहलीज लाँघे पर इतना न हो तो आदमीको अपना रास्ता तो दिखाई देता ही है। कैसी-कैसी खोपड़ीके आदमी हैं इस दुनियामें। दुनिया क्या पूरा अजायब घर है यह।

लोग यों ही अजायबघर देखते-फिरते हैं। अजायबघरोंका अजायबघर तो यह दुनिया है। देखे जाओ और खत्म ही न हो। उन नकली अजायब घरोंमें क्या रखा है? कुछ मूर्तियाँ कुछ सिक्के पुराने पत्थर, कुछ जन्तुओंके अस्थि और जानवर। पिंजरेमें बन्द उन शेरोंको देखकर मेरा तो

मसरूफ ही रहा है। भावविभोर हो मैंने कहा 'मेरी शिकायत यह है कि सूरदास और होरी हमारे आजके जीवनकी कुरूपता हमारे सामने रखते हैं, पर वे भविष्यका सौन्दर्य हमें नहीं दिखाते। आप हमारे सामने मौजूदा समाज-व्यवस्था तो रखते हैं, पर हम उसे कैसे तोड़ें और फिर कैसी समाज-व्यवस्था यहाँ स्थापित करें यह नहीं बताते! मैं अपनी बात इस तरह भी रख सकता हूँ कि आप हमें आजका बुरा रूप तो दिखाते हैं पर उसके विरुद्ध क्रान्तिका सन्देश नहीं देते!

बाबूजी एकदम गम्भीर हो गये तब सँभले। कहा 'तुम्हारी बात ठीक है और मैं मानता हूँ कि उसमें सार है, पर क्रान्ति कोई तमाशा नहीं है कि जब चाहा दिखा दिया। उसके लिए वातावरण चाहिए। इस वातावरणके दो रूप हैं। पहला यह कि जनता आजकी बुरी दशाको खूब जान ले और दूसरा यह कि वह उससे ऊब उठे।

मैंने सेवासदन प्रेमाश्रम रंगभूमि कर्मभूमि और दूसरे कई उपन्यासोंमें आजकी बुरी दशा जनताके सामने रखी और गोदानमें उससे ऊब पैदा की। अब मैं ठेठ क्रान्तिपर आ रहा था कि यहाँ चक्कर आया और यह काम बीचमें रह गया।

। बात यह कि अतीतकी कली खिलकर वर्तमानका फूल बनती है और यही फूल भविष्यका फल है। कलीमें फूल है और फूलमें फल। इसी तरह मैंने भी वर्तमानकी तसवीर खींचते समय भविष्यके इंगित किये हैं। तुम्हें याद होगा – जमींदारीके बारेमें मैंने अपनी एक कहानी – 'जमा – में एक देहाती और सिपाहीमें यह संवाद कराया है

'लोग कहते हैं कि यहाँ सुराज हो जायेगा तो जमींदार न रहेंगे।

"जमींदारोंके रहनेकी जरूरत ही क्या है? यह लोग गरीबोंका खून चूसनेके सिवा और क्या करते हैं?

'तो क्या सरकार सब जमींदारोंकी जमीन छीन ली जायेगी?

यह जीवनका कोष है और मैंने अपने उपन्यासोंमें उसे कोषके रूपमें ही चित्रित किया है। इससे मेरे उपन्यासोंका आकार बढ़ गया है और विवरण बाहरे हो गये हैं। मेरे कला-पारखी आलोचकोंको इससे खेद भी हुआ है, पर मैं क्या करूँ। मैं मजबूर हूँ कि सत्यकी ओरसे आँखें नहीं मूँद सकता।

मैंने नम्र होकर कहा, 'आपकी इस भावनाके प्रति मैं हार्दिक सम्मान प्रकट करता हूँ और मुझे यह स्वीकार करनेमें जरा भी झिझक नहीं कि भावी पीढ़ियाँ राष्ट्रके नव-निर्माताओंकी पंक्तिमें आदरके साथ आपका नाम स्मरण करेंगी, पर इस दिशामें मुझे एक निवेदन अवश्य करना है। वह यह कि आपके पात्र कभी-कभी खूब छलाँगें मारते हैं।'

हँसकर बोले, 'कैसी छलाँगें? जरा समझाइए तो मैं उसपर कुछ कहूँ।'

मैंने कहा, 'आपके पात्रोंमें बहुत बार क्रम-विकास नहीं होता। अभी जो डरपोक है, वह पल-भर बाद साहसका अवतार हो जाता है। चौबारों-पर पान बेचनेवाली स्त्री कुछ ही दिनोंमें ऐसी निखर आती है कि कभी क्रान्तिके महिमा-चरित्र भी मात मान जाते हैं। घटनाओंके क्रम-विकासमें भी यही बात है। छोटी-सी घटनाका आप इतना बड़ा तूमार बाँधते हैं कि चौराहोंपर तमाशा दिखानेवाले जादूगर भी सिर झुका लेते हैं। इसे ही मैं छलाँग कहता हूँ।'

'ओह, यह मतलब है आपका?' वे बोले, 'ये दो अलग-अलग बातें हैं, इनका उत्तर भी मैं अलग-अलग दूँगा। मानव-पात्रोंमें यह परिवर्तन वह चीज है, जिसे मैं मनुष्यमें देवत्व कहता हूँ और देवत्व चमत्कारिताका भण्डार है, इसलिए एक पात्रमें यह सहसा परिवर्तन कोई असम्भव बात नहीं। वाल्मीकिको डाकूसे ऋषि होनेमें कितनी देर लगी। फिर मेरे ही पात्र बदल जाते हैं तो क्या बुराई है। दूसरी बातके बारेमें मुझे यह कहना है कि परिणामकी यह अतिरंजना — उसे बढ़ाकर कहना — समाज की उस बुराईको जिसके खिलाफ कहानी खड़ी है, ऐसा कुरूप कर देता है

कि पाठकपर प्रभाव पड़े।

मैंने बीचमें ही कहा 'पर इसमें यथार्थता तो नहीं रहती बाबूजी!'

'तो यथार्थको हूबहू खींचकर रख देना ही तो कला नहीं है।' वे बोले 'मैं पूरे जोरसे कहता हूँ कि केवल यथार्थकी नकलका ही नाम कला नहीं है। फिर यथार्थका यथार्थ रूप दिखानेसे फायदा ही क्या? वह तो हम अपनी आँखोंसे देखते ही हैं। कुछ देरके लिए तो हमें इन कुत्सित व्यवहारोंसे दूर रहना चाहिए, नहीं तो साहित्यका मुख्य उद्देश्य ही नष्ट हो जाता है।

मैंने जरा व्यक्तिगत होते हुए पूछा 'यह आश्चर्यकी बात है कि आप ईश्वरमें विश्वास नहीं करते पर आपके साहित्यमें मानवमें देवत्व दर्शनके सचमुच अनेक प्रसंग हैं। यह क्या बात है?'

बहुत जोरसे हँसे और तब बोले 'ईश्वरमें विश्वासकी जरूरत पड़ती ही उन्हें है, जो मानवमें देवत्वका दर्शन नहीं कर सकते। बुरा आदमी भी बिलकुल बुरा नहीं होता। उसमें कहीं-न-कहीं देवता अवश्य छिपा है, यह मनोवैज्ञानिक सत्य है। मैंने अपनी कलमसे इस सत्यको ही कहीं-कहीं प्रकाशित कर दिया है।

'आपने बड़ी कृपा की जो मेरे प्रश्नोंके उत्तर दिये। यदि आप एक और प्रश्नका भी उत्तर दें तो आभारी हूँगा।' नये प्रश्नके लिए मैंने जरा जगह बनायी तो सरल होकर बोले

"जिज्ञासी आप आभारी न भी हों तो भी उत्तर तो दूँगा ही पर पूछिए संक्षेपमें क्योंकि मेरे जानेका समय अब हो गया है।

मैंने तीरको आलपीन बनाकर पेश किया — 'कुछ लोग कहते हैं कि आपने 'रंगभूमि'का प्लाट थैकरेके 'वैनिटि फेयर'से लिया है। क्या यह ठीक है?'

उनके चेहरेपर गम्भीरता बरस पड़ी। बोले 'मुझे 'रंगभूमि'का बीजांकुर एक अन्धे भिखारीसे मिला जो मेरे ही गाँवमें रहता था। एक

ज़रा-सा इशारा, एक ज़रा-सा बीज लेखकके मस्तिष्कमें पहुँचकर इतना विशाल वृक्ष बन जाता है कि लोग उसपर आश्चर्य करने लग जाते हैं। इंगलैण्डके प्रसिद्ध उपन्यासकार डिकेंसने पिकरम गाड़ीके मुसाफ़िरोंकी ज़बानसे 'पिकविक' नाम सुना और बस अपनी अमर हास्य कृति 'पिकविक-पेपर्स' की रचना की। श्रीमती जॉर्ज इलियटने अपने बचपनमें एक फेरी वालेको कन्धेपर थान रखे देखा था। इसीपर उन्होंने 'साइलस मार्नर' नामक उपन्यास रचा। मर्मस्पर्शी रचना 'स्कारलैट लैटर' के बीज हॉथार्न को एक पुराने मुकदमेकी मिसलसे मिले। दो सहेलियोंकी इस बहसमें कि उपन्यासकी नायिका सुन्दर हो या नहीं 'जेन आयर' की सृष्टि हुई।

ज़रा रुककर बोले, "किसी पुस्तकसे नयी रचनाकी नींव मिल जाना भी कोई असाधारण घटना नहीं है। हाज़लेटने लिखा है कि मुझे बाइबिलसे प्लाट मिलते हैं। बेलजियमके विख्यात नाटककार मेटरलिंकका 'मोनावेना' नाटक ब्राउनिङ्गकी कवितासे प्रेरित है और 'मेरी मैगडालीन' एक जर्मन कवितासे। अगर कोई यह दावा करे कि मैं वह लिखूँगा जो कहीं किसीने किसी भी रूपमें कभी नहीं लिखा तो मेरा ख़याल है कि उसकी रचना बस अद्भुत ही होगी।

यह सब उन्होंने इतने भावावेशमें कहा कि मैं भावविभोर हो गया। ज़रा सँभला तो देखा चौकीपर मेरे सामने 'रंगभूमि' खुली हुई थी — बाबूजी न थे। क्या वे आये थे? क्या वे चले गये?

○

लखनऊ काँग्रेसके उन दिनोंमें

किसी तरह मैं ८ अप्रैल १९३६ को सुबह लखनऊ पहुँच गया। मोती नगर, भूलका अथाह भण्डार ! ओह, कमिटीका यह पुराना बीमार यहाँ कहाँ जीयेगा ! अचानक हमारे जिलेके यशस्वी राष्ट्रकर्मी वैद्य श्री रघुनाथ 'पावक' मिल गये। व पास ही आलमनगरके एक मकानमें ठहरे हुए थे। वहीं डेरा जमाया। लखनऊ काँग्रेस और पावकजीका साथ सौभाग्यकी बात थी। पावकजी सिपाही भी हैं और साहित्यिक भी, पर मिटनेवाले व्यक्तित्वकी और मजलिसियतसे कोसों दूर, सरसताके स्रोत !

प्रयागसे जवाहरलालजीको आदिके आनेकी खबर गुप्त रखी गयी थी पर हमें पता चल गया। स्टेशन पहुँचे देखा पण्डितजी दूसरे नेताओंके साथ थर्ड क्लाससे उतर रहे हैं। साधारण धोती, चप्पल कुरता और वही मुसलमानी सभ्यताकी बण्डी जिसे इसी जवाहरलालके नामसे इस युगमें 'जवाहर बण्डी' का सुन्दर नाम मिल गया है। फ़ौरन लाहौर काँग्रेसका राष्ट्रपति जवाहर याद आ गया। वह सुरमई अचकन वह चूड़ियोंदार सिला हुआ पायजामा और उसे ही लेकर लाहौर पहुँचनेवाली वह स्पेशल ट्रेन कितना परिवर्तन हुआ है इस आदमीमें !

भारतमें समाजवादके प्रवर्तक पण्डित जवाहरलालपर, मैंने देखा गान्धीवादका प्रभाव झलक रहा है। बापू भी कहते हैं मुसाफिरोंका पूरा सुभीता और मेहतरकी भी पर कानून हमारे हाथोंमें नहीं। इसलिए यही सम्भव है आज यह सब तो हम अपने प्राप्त सुभीतोंको 'स्वयं' परित्याग कर अपने समाजके नीचेके स्तरमें मिल तो सकते ही हैं। मुझे दीखा दोनों महापुरुष एक ही मोटरमें बैठे जा रहे हैं फोर्डकी मोटरमें भी और समाज

व्यवस्थाको मोटरमें भी। क्योंकि कैम्पमें भेद नहीं है और अभी तो रास्तेमें भी भेद नहीं है।

राष्ट्रपतिका जुलूस

चारों ओर पैदल जुलूसकी चर्चा थी। जवाहरलालजीने घोड़े या गाड़ीपर बैठनेसे इनकार कर दिया था पर समझमें ही न आता था कि कैसे कण्ट्रोल होगा यह। पिछले आठ वर्षोंमें सैकड़ों जुलूस निकाले हैं। ओह जनताका वह रेला! क्या वह कण्ट्रोलकी चीज है और वह भी सिर्फ जवानोंसे! स्वयंसेवक दलके एक कप्तानपर मैंने अपनी बेचैनी प्रकट की। वे मुसकराकर बोले 'क्यों कण्ट्रोलमें क्या आफत है? जैसे हिटलर मुसोलिनीका जुलूस निकलता है, वैसे ही मिस्टर नेहरूका क्यों नहीं निकल सकता!' मैंने गौरसे उनकी तरफ देखा और मनमें उनके जोशकी कद्र की पर मेरी बेचैनी ज्यों-की-त्यों रही।

साढ़े पाँच बजे जुलूस निकलना था पर चार बजेसे पहले ही कम्पनी-बागका वह विशाल प्रांगण खचाखच भर गया। कितने आदमी थे? क्या कहूँ बस आदमी-ही-आदमी थे — बीचमें पाँवमें छतपर छज्जोंपर, यहाँ तक कि खम्भोंपर, वृक्षोंपर भी। वहाँ सिर्फ दो ही आदमियोंकी माँग थी — पण्डित जवाहरलाल और गजरेवाला। जितने भी दामपर गजरा बिक सकता था और जितने भी दामके लाकर जवाहरलालजीकी एक झाँकी ली जा सकती थी। भीड़ इतनी और ऐसी कि पास खड़े एक बुजुर्ग मुसलमानने कहा 'अल्लाह तेरी कुदरत कि बड़े-बड़े लाटों और बादशाहोंके जुलूस यहाँ निकले पर कभी ऐसी रौनक नहीं हुई!'

जुलूस शुरू हुआ। कानपुरके श्री रघुवरदयालु गुप्त और उनके दो शिष्य घोड़ोंपर चढ़े आगे-आगे रास्ता कर रहे थे पर वे रास्ता करते और वह काईकी तरह भर जाता! बात साफ थी कि लोग जवाहरलालजीको देखने आये थे और वे दीख न रहे थे। मुश्किलसे १ ४ मन चलकर

पण्डितजी अमीनाबादमें आये। बस यहाँ सब नियम टूट गये और भीड़के रेलेमें पण्डितजी कुचले-से जाने लगे। हँसकर उनका चारों तरफ देखना बड़ा मधुर था पर इसे कौन देखता?

स्वयंसेवकोंकी दशा बड़ी दयनीय थी जैसे हारी हुई फौजके सिपाही जान लेकर भागे जा रहे हों। स्वयंसेवक और उनके दलपति कुछ सचेष्ट रहते तो पण्डितजीको लाठियोंके घेरेमें रख सकते थे और अमीनाबादसे मोतीनगर बहुत दूर नहीं था पूरे रास्ते मोटे रस्सोंसे रास्ता बनाया जा सकता था। और इस घटनाने बताया कि कांग्रेसको एक स्थायी सुसंगठित स्वयंसेवक दलकी कितनी आवश्यकता है और हमारे राष्ट्रीय नेताओंको इधर कितना ध्यान देना चाहिए।

प्रायः पचास क़दम चलते ही पण्डितजीको घोड़ेपर चढ़ना पड़ा। इससे भीड़ काफ़ी शान्त हुई। और मुक्त प्रसन्न और नम्र मुख-मुद्रा सफ़ेद मोती-से बहरे और सभी हुई सवारी देखने ही लायक दृश्य था। चारों ओरसे गजरे बरस रहे थे पर पण्डितजी सचेष्ट थे कि कोई गजरा नीचे न गिरे और किसी भाई-बहनके हृदयको ठेस न लगे।

एक स्थानपर पण्डितजीके परिवारके लोग बैठे जुलूस देख रहे थे। उन्हें देखकर मुझे लाहौरकी वह दुकान याद हो आयी जहाँ बैठकर १९१९ में स्वर्गीय पण्डित मोतीलाल नेहरू श्रीमती स्वरूप रानी नेहरू और श्रीमती कमला नेहरूने जवाहरलालजीका वह शाही जुलूस देखा था। जवाहरलाल-का घोड़परसे सिर झुकाकर माता-पिताको वन्दना माता-पिताके चेहरेका उल्लास हृदयके वात्सल्य मोतीलालजीका वह ज़बर्दस्त विजेतृत्व जवाहर लालजी वह मीठी मुसकराहट कमला नेहरूकी वह गर्व-भरी मुखमुद्रा पति पत्नीकी आँखों-ही-आँखोंमें होनेवाली वे बातें और चारों ओर बिखरनेवाली वह मन्द-मधुर मुसकान याद करके भी तड़प उठा! ओह, नेहरूपरिवार का बलिदान!!

विषय-निर्वाचिनी समिति

१ तारीखको दोपहर दो बजेसे विषय-निर्वाचिनी समिति (सब्जेक्ट कमेटी) की बैठक हुई। श्री राजेन्द्रप्रसादजीने पण्डित जवाहरलालजीको नाम दिया। लाहौरमें पण्डितजीने यही नाम स्वर्गीय पण्डित मोतीलाल नेहरूसे लिया था और मातास्वरूपरानीने उनका माथा चूमकर उनकी बलैयाँ ली थीं जिसे देखकर हजारों आँखें तर हो गयी थीं पर आज बूढ़ी माताका हृदय जर्जर है, व्यथित है – पतिके अभाव और बहूकी मृत्युसे – वे समारोहमें कैसे भाग लेतीं!

पण्डितजीने जब अध्यक्षासनमें कहा "मैं (कमला नेहरूकी विदेशमें मृत्युके बाद) सान्त्वनाके लिए भारत माताकी गोदमें आया एक बालककी तरह। आपका प्रेम पाकर मैं कृतार्थ हुआ। फिर भी भीतर कुछ सूना-सूना लगता है।" सुनकर सहृदयोंके हृदय द्रवित हो गये।

आरम्भमें ही एक संशोधन लिखानेके लिए उन्हें कागज-पेन्सिलकी जरूरत पड़ी पर अवसर वह था नहीं। पण्डितजीने कहा "कैसा इन्तजाम है रिसेप्शन कमेटीका! है कोई यहाँ रिसेप्शन कमेटी (स्वागत-समिति) का मेम्बर?" कोई वहाँ न था। बोले "डाँट-फटकार सुननेके लिए किसी को तो रहना ही चाहिए।"

बात यह है कि पण्डितजी स्वयं इतने सावधान हैं – अपना छोटे-से छोटा काम इतनी तत्परतासे करते हैं कि जरा भी कमी वे बरदाश्त नहीं कर सकते। उनकी स्फूर्ति और सजगता भी असाधारण है। उनके आसनके सामने बैठे-बैठे बोलनेका माइक लगा था। राजेन्द्रबाबूने उनसे उधर बोलनेको – बैठे-बैठे ही बोलनेको – कहा तो बोले "बैठकर! बन्धनमें बोलना तो मुझसे नहीं हो सकता! बाप रे, बन्धनोंका इतना तीव्र विरोधी यह जवाहरलाल!

वे बराबर ऊँचे लाउडस्पीकरपर, खड़े होकर ही बोले। किसी

वक्ताका नाम न पुकारते और उनके आते ही लाउडस्पीकरका मुँह वक्ताकी तरफ कर देते। वक्ताको माइकसे कितनी दूर खड़ा होना चाहिए, उसमें ज़रा भी फ़र्क़ रहता तो उसे हाथसे ठीक जगह खड़ा करते। लाउडस्पीकरवालोंका आदमी इस कामके लिए नियुक्त था पर जबतक वह उठता पण्डितजी अपना काम पूरा भी कर डालते!

उनकी कमरके पीछे एक मोटा और लम्बा तकिया था — कमरके सहारेके लिए पर जवाहरलालजीको 'कमरके सहारे' की ज़रूरत कहाँ है? वे सदा उसके ऊपर बैठते थे — तनकर। हरिपुराकी हालतमें एक दिन वे साढ़े आठ घण्टे बैठे बैठे क्या आसन बाँधे ही रहे। तीन दिन सब्जेक्ट कमेटी और दो दिन खुला अधिवेशन' इस तरह पूरे पाँच दिन मैंने उन्हें बहुत नज़दीक और गहराईसे देखा पर इस इतने लम्बे समयमें उन्होंने भो भूलसे एकबार जमुहाई नहीं ली। ऐसा मज़बूत है हमारा जवाहरलाल!

बोलनेवालोंके एक-एक शब्दपर वे ध्यान रखते थे। वह ज़रा बहका कि वे तमककर उठे जैसे शेर अपनी गुफासे छलाँग मारकर निकले। उन्हों-के मायाजालमें वे नहीं फँसते न जनसाधारणको फँसने देना चाहते हैं। किसान और मज़दूरोंके प्रतिनिधि उनकी संस्थाओंकी मार्फ़त लिये जायें श्री अच्युत पटवर्धनके इस संशोधनका समर्थन करते हुए श्री विश्वम्भर दयालु त्रिपाठीने कहा इस प्रस्तावमें एक 'डिलेम्मा' है और उन्होंने बार बार इस डिलेम्मा शब्दको दोहराया। पण्डितजीने फ़ौरन टोका 'यह 'डिलेम्मा' क्या होता है मेरी कुछ समझमें नहीं आता। वकीलका कानूनी दिमाग बहुत तेज़ होता है।"

श्रीमती पार्वती देवी बोलने आयीं — मुझे कोई स्पीच नहीं देनी है पर एक शंका हो गयी है' पण्डितजीने फ़ौरन टोका — 'लेकिन उस शंकाका सम्बन्ध इस प्रस्तावके साथ हो।

अनुशासन जवाहरलालजीकी अपनी विशेषता है। क्या मजाल कि कोई ज़रा भी चूँ कर सके। श्री शालिग्राम बोल रहे थे कि श्रीमती कमला

देवी चट्टोपाध्यायने उन्हें बीचमें टोक दिया । फिर क्या था पड़ी फटकार 'ऑर्डर ऑर्डर ! आप कौन हैं बस करनेवाली ? मैं तो यहाँ हूँ ।

बात-बातमें मुसकराहट हर मुसकराहटपर एक झपट और हर झपटपर एक मीठी मुसकान एक-एक सौसमें तीन-तीन झाँकियाँ और मामला समाप्त — सोचता हूँ जवाहरलालके व्यक्तित्वकी यह भी एक बड़ी खूबी है ।

श्री अमृतलाल सेठको पुकारा गया संशोधनका समर्थन करने पर वे पेश करने लगे एक नया संशोधन । पण्डितजीने नये संशोधनका नोटिस मांगा तो उन्होंने कहा 'मैं कल अपना संशोधन कृपलानीजीको दे चुका हूँ इसलिए मैं उसे पेश कर सकता हूँ ।

अध्यक्षका यह प्रतिवाद और फिर नहरू-अध्यक्षका ! पण्डितजी तमक-कर इतनी तेजीसे उठे और उनकी तरफ बढ़े कि सचमुच वे घबरा गये और उनके परों (जरा भी अतिशयोक्ति नहीं) मानकर मंचसे नीचे कूद गये। विख्यात पार्लमिण्टेरियन श्री सत्यमूर्तिने इस व्यवहारका बहुत करारा प्रतिवाद किया और अन्तमें कहा अध्यक्षको जेण्टलमैन तो होना ही चाहिए ।

मामला संगीन हो गया। सबके मनमें एक ही प्रश्न — अब पण्डितजी क्या करेंगे ? क्या कहेंगे पण्डितजी उठे मुसकराये और बोले 'इस हाउसमें मिस्टर सत्यमूर्ति ही सबसे बड़े जेण्टलमैन हैं और मैं तो बिलकुल जेण्टलमैन (सभ्य आदमी) नहीं हूँ ।

श्री सत्यमूर्तिने अपने ढंगपर उन्हें असभ्य कहा था और उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया । स्थिति यह कि अब हाउस इसे स्वीकार कर ले तो विधानकी मर्यादा यह कि जवाहरलालजी तुरन्त त्यागपत्र दें और अपना आसन खाली करें। विधानशास्त्री श्री सत्यमूर्तिने खड़े होकर कहा हमारे अध्यक्ष निश्चित रूपसे जेण्टलमैन हैं । श्री अमृतलाल सेठने भी उन्हें जेण्टलमैन कहा । इसपर पण्डितजी बहुत जोरसे हँसे और तब बोले 'नहीं

मैं जेन्टलमैन नहीं हूँ और नहीं एक विद्वान् हूँ। उनकी हँसीमें सारा विरोध आप ही आप घुल गया बह गया।

जवाहरलाल चौकन्ने इतने कि प्रतिनिधियोंकी जेब तककी खबर रखें। प्रस्ताव-पत्र कम थे और प्रतिनिधियोंमें माँग थी पण्डितजीको एक पत्र मिला। उन्होंने कहा 'मेरे पास एक है जो चाहें ले लें'। एक प्रतिनिधिने माँगा तो बोले आपके पास तो है यह। प्रतिनिधिने कहा 'यह दूसरा है'। पर वे कहाँ चूकनेवाले। बोले 'नहीं नहीं है। जरा देखिए तो महाशय!' वाकई यह वही पत्र था। कमाल यह कि पण्डितजी और प्रतिनिधिके बीचमें प्रतिनिधियोंकी कई कतारें थीं।

दुरुस्त निर्णय जवाहरलालजीके सभापतित्वकी विशेषता थी। डॉक्टर पट्टाभि सीतारमैयाने कांग्रेस-वर्किंग कमेटीके पदग्रहण-सम्बन्धी प्रस्ताव का विरोध किया यद्यपि वे खुद भी वर्किंग कमेटीके मेम्बर थे। उनका विरोध परम्पराके विरुद्ध था। श्री पुरुषोत्तमदास टण्डनने इसका प्रतिवाद किया। श्री पट्टाभिने मामला प्रधानपर छोड़ दिया। सबने आश्चर्यसे सुना कि पण्डितजीका निर्णय परम्पराके विरुद्ध है – पट्टाभिके अनुकूल! इसमें सन्देह नहीं कि यह निर्णय पण्डितजीके सुलझे हुए मस्तिष्कका प्रतिबिम्ब था। इसके बाद तो उन्होंने दो-तीन बार प्रस्तावपर बहससे पहले ही अपनी सम्मति प्रकट कर – प्रस्तावके विरुद्ध अपनी निजी सम्मति बताकर परम्पराको भंग किया। सचमुच यह परम्परा-भंग बहुत सुन्दर था जैसा कि कलकत्ता-कांग्रेसमें स्वयं जवाहरलालजीने एक बंगाली युवकके आक्षेप करनेपर कहा था कि कभी-कभी बन्धनहीन हो जाना भी तथा पतिकी सुन्दरता है। जवाहरलालजी जब कांग्रेसके जनरल सेक्रेटरी थे और एतराज कांग्रेस-अध्यक्ष श्री मोतीलाल नेहरूपर किया गया था।

पण्डित जवाहरलालके खड़े होनेकी भी एक अदा थी। शरीर तना हुआ पैर टुके हुए-से बायाँ हाथ बण्डीकी जेबमें और दायाँ वक्षके बटनपर या फिर लाउडस्पीकरके चक्करको पकड़े हुए।

अँगरेज़ीका सब्जेक्ट कमेटीमें काफ़ी ज़ोर था। कुछ लोग तो सौ फ़ीसदी भी अँगरेज़ी बोलते थे। पूनाके श्री शंकरराव देवने एक उपसमितिके बारेमें हिन्दीमें कुछ पूछा। कृपलानीजीने उसका अँगरेज़ीमें जवाब दिया। स्वामी सहजानन्द सरस्वतीके टोकनेपर कृपलानीजीने भूल स्वीकार की। पण्डितजीसे भी देवने पूछा 'आप हिन्दीमें बोलिएगा?' उत्तर मिला — 'हाँ हाँ, मैं तो यथाशक्ति होते भरी टूटी-फूटी हिन्दीमें ही बोलूँगा!' कितनी मधुर थी यह टूटी-फूटी हिन्दी!

पण्डितजी साधारणतया हिन्दीमें ही बोले। पद-ग्रहणपर उन्होंने अपनी राय दी तो पहले हिन्दीमें और पीछे अँगरेज़ीमें। प्रस्ताव तो सभी अँगरेज़ीमें थे और उनका अनुवाद भी न किया जाता था। पहले ही दिन शामको मैंने टण्डनजीसे इसकी शिकायत की 'एक तरफ़ तो आप काँग्रेस-अधिवेशनमें ज़्यादासे ज़्यादा किसानोंको बुलाते हैं और दूसरी ओर यह उम्मीद करते हैं कि हरेक प्रतिनिधि अँगरेज़ी जाने।' टण्डनजीने पण्डितजीसे कहा। इसके बाद बराबर अनुवाद हुआ और खुले अधिवेशनमें भी यह प्रथा जारी रही।

आगामी चुनावोंके बाद काँग्रेस पद-ग्रहण करे या नहीं, यही इस अधिवेशनका मुख्य प्रश्न था। काँग्रेस हाई कमाण्डका मूल प्रस्ताव था कि चुनाव लड़ा जाये, पर पद-ग्रहण करने न करनेके बारेमें अभी विचार न किया जाये। गरम दल चाहता था कि पद-ग्रहण न करनेकी बात साफ़ कह दी जाये और नरम दल चाहता था कि पद-ग्रहण करनेकी बात साफ़ कह दी जाये। यही टक्कर थी।

इस प्रस्तावपर खूब गरमी। बहुत-से संशोधन आये, बहुत-से भाषण हुए, पर दो भाषण विशेषतः उल्लेखनीय थे। पहला श्री आचार्य नरेन्द्र देवका प्रस्तावके विपक्षमें और दूसरा श्री राजेन्द्रप्रसादका पक्षमें। हौले-हौले काँपते-से आचार्यजी माइकपर आये। शरीरमें हड्डियोंका एक ढाँचा दमेके रातकी ठोकरें, मगर, चेहरेपर मुस्की छायी हुई। उनका लखनऊ

माना ही पचासवीं भी इतनेपर भी और इस दशामें भी फिर बोलना। श्री जयप्रकाशनारायणने कहा 'बैठकर बोलिए।' उन्होंने मना किया तो मुस्कराते झिड़ककर जयप्रकाशजीने कहा 'तो मत बोलिए।' इस झिड़कीमें कितना आदर था, कितना अपनापन, कितनी मिठास।

कुरसी आयी, तो पण्डितजीने दोनों हाथोंसे पकड़कर उन्हें उसपर बैठा दिया। मेरे पास ही एक अँगरेज पत्रकार बैठा था। मुँह बनाकर बोला 'ओह, बेचारा बूढ़ा!' उसका मतलब था कि यह बीमार क्या बोलेगा। मैंने उससे कहा 'कृपया अपने कानोंको सँभालें।' आचार्यजी बोले, तड़पकर बोले, तड़पाकर बोले। शरीर भग्न पर ऐसी आवाज, हृदय जो उछलता हुआ है। क्या ऊर्जस्वित् उद्गम, सरिताकी लहर-सा प्रवाह, विचारोंकी कड़ियाँ और भावनाओंकी लड़ियाँ कि एकके बाद एक पिरोई हुई – जयाल्लास और पश्चात्तापका एक अजब मजमुआ। सचाई यह कि भाषा और प्रवाहकी दृष्टिसे पूरी लखनऊ काँग्रेसमें यही सर्वोत्तम भाषण था। उस अँगरेज पत्रकारने कहा 'कुछ-कुछ समझा, पर बहुत सुन्दर, जैसे झरना!'

इस प्रस्तावकी बहुमत अखिल कमेटीपर बहुत आक्षेप हुए। उसे पुराने शब्दोंमें बेईमान और प्रतिगामी कहा गया। इस सबका जवाब देनेको राजेन्द्रबाबूने जो भाषण दिया, उसमें ओज भी था और जोश भी। प्रवाह ऐसा कि कानोंमें मिश्री घुले और प्रभाव ऐसा कि उलटा पलट दिया। समाजवादियोंको उम्मीद थी कि प्रस्ताव पास भी होगा, तो पाँच-सात वोटसे, पर बहुत अधिक वोटोंका अन्तर रहा। बम्बईके एक समाजवादी नेताने मुझसे कहा 'गजब कर दिया आज राजेन्द्रबाबूने!' सचमुच प्रभावकी दृष्टिसे यही काँग्रेसका सर्वोत्तम भाषण था। डॉ॰ पट्टाभि इस प्रस्तावपर तटस्थ रहे, यह एक खास बात थी।

सब्जेक्ट कमेटीमें होनेको तो बहुत थे, पर उल्लेखनीय हैं, सर्वश्री अच्युत पटवर्धन, कमलादेवी चट्टोपाध्याय, डॉ॰ पट्टाभि, सेठ गोविन्ददास

नम्बर एकका एडवोकेट और नम्बर तीनका कौंसली — बोलनेमें वह साथ आगे पर स्पिरिटमें इतना ही पीछे कहूँ बहसमें भारी पर अनुभूतिमें हल्का।

जयरामदास दौलतराम स्वस्थ सुन्दर, सादे आत्मसंयमी और गम्भीर। सदा सजग नेता भी और कार्यकर्ता भी।

भाषण गिनतीमें बहुत थे पर 'टु दि प्वाइण्ट' बहुत कम। ज्यादातर प्रतिनिधि सिर्फ बोलनेके लिए, लोगोंकी नोटोंमें आनेके लिए बोलनेवाले — हर बातपर घण्टों बोलनेको तैयार।

खद्दरके विरोधमें एक संशोधन आया। बिहारके किसान नेता श्री स्वामी सहजानन्द सरस्वतीने समर्थन किया। बोले 'मेरे किसान साथी कहते थे कि कांग्रेसमें जानेको डेलीगेटके लिए चौदह आने चाहिए। लोगोंने मुझसे कहा कि हम लँगोटी लगाकर कांग्रेसके खिलाफ एक प्रदर्शन करना चाहते हैं। कहिए आयें आगी ?'

बिहारके ही एक प्रतिनिधि इसपर बहुत झल्लाये और बोले 'इन मूर्खोंको लँगोटी लगाकर प्रदर्शनकी बात तो सूझी पर सूत कातनेकी नहीं। जिन लोगोंको जिस बात का ज्ञान नहीं है उसपर पता नहीं बकवास क्यों करते हैं।' एक खादी भक्तके नाते कड़वी होनेपर भी मुझे उनकी बात बहुत पसन्द आयी।

सब्जेक्ट कमेटीमें पण्डालम मंचके पीछे कुरसियोंकी एक कतार थी। उसमें अधिकतर थे मौलाना अबुलकलाम आजाद सरोजिनी नायडू भूलाभाई देसाई और डॉ. अन्सारी। आजाद साहब बराबर सिगरेट पीते रहते और पूरे समय उपहार मिलता रहता भारत-कोकिलाको। भूलाभाई बराबर इन-उनसे बातें करते और सब हँसते सरल और सरस। केन्द्रीय असेम्बलीके सर एन. एन. सरकार सर हेनरी क्रेक और सर फाकरुल्ला तीन-तीन घण्टोंके हिलती बहसको बन्द कर देनेवाला यह महारथी निजी जीवनमें कितना नरम है यह देखकर दिलको एक मीठा मानवीय स्पर्श

स्वर्गीय कमलाकी स्मृतियाँ मचल रही थीं ?

दूसरे दिन ठीक उसी समय वे सन्तरेका रस लायीं और दे गयीं। क्या यह काम नौकर न कर सकता था ? क्या किसी स्वयंसेवकको यह काम न सौंपा जा सकता था ? नौकर भी थे और स्वयंसेवक भी पर बहनका यह सात्विक ममतामय स्निग्ध प्रेम !

खुले अधिवेशनमें

१२ तारीखको शामके छह बजे खुला अधिवेशन शुरू हुआ। मधुर संगीतके साथ मिलकर स्वर्गीय बंकिमचन्द्रके अमर गीत वन्दे मातरम्की स्वरधारा अमेय हो उठी ! अद्भुत कण्ठवीणा अपूर्व स्वर-संयम। सचाई यह कि वन्दे मातरम्के सौन्दर्य और माधुर्यका इतना हार्दिक साक्षात्कार आज पहली बार ही हुआ। जन-मनकी थकान उतर गयी तालियोंके वातावरणकी सृष्टि हुई।

भरा-पूरा बदन गोरे रंगसे दोनों कन्धोंपर झूलती चादर, शान्त सौम्य मुखमुद्रा – नेता बिलकुल नहीं मानव भरपूर ये थे स्वागत-कमेटीके नाम-निमित्त स्वागताध्यक्ष श्री श्रीप्रकाशजी। नाम-निमित्त या कि जब इस पदके उम्मीदवार दो व्यक्तियोंमें किसी तरह समझौता न हो सका और प्रबन्ध-व्यवस्थाकी काफी मिट्टी पलीत हो चुकी तो काफी-से श्रीप्रकाशजीको बुलाकर पदासीन किया गया। उनका भाषण उनकी ही तरह सादा संयत और शिष्ट !

उनके बाद आये उर्दूके यशस्वी कवि श्री सागर निज़ामी और उन्होंने जवाहरलालपर अपनी कविता पढ़ी। शान्त और तालियोंसे भरे जैसे जवाहरलाल वैसी ही शान्त और तालियोंसे भरी कविता फिर सागर साहबके कण्ठकी कूक और भीना-भीना तरन्नुम-भावावेशमय कविता रच गयी तो कवितामें वातावरण रच गया।

कविताके स्वर सिमटे कि जवाहरलालजी पीछेवाले बड़े मंचसे बारह फीट ऊँचे छोटे मंचकी ओर चले। अब एक दृश्य-अवश उतरे सागर

थपथपाया और प्यारसे उनकी तरफ देख मुसकराये। यह उनके भाषणकी स्वीकृति थी। पण्डितजीने माइकपर कहा — 'काम तो अभी और भी है पर पहला काम है यह कि हम महात्माजीसे कहें कि वे अब तशरीफ ले जायें। मैं शर्मिन्दा हूँ कि उन्हें कमजोरीकी हालतमें इतनी देर इन्तजार करना पड़ा।'

महात्माजीने पूरे उल्लासमें अपना अट्टहास किया। खादीके अनन्त मंडपमें वह अट्टहास गूँज उठा जैसे हिमाच्छादित कैलाशपर शिवका अट्टहास! लाउडस्पीकरने युगदेवताकी प्रसादीके रूपमें उसे चारों ओर बाँट दिया। जवाहरलालजी मंचके किनारे तक उन्हें पहुँचाने आये और वहीं खड़े-खड़े महात्माजीको मोटरमें बैठते हुए देखते रहे। मनमें प्रश्न उठा: यह नव युग-द्वारा प्राचीन युगकी विदाई है या दोनोंका समन्वय? 'कल' इस प्रश्न-पर क्या कहेगा यह मैं नहीं जानता पर 'आज' की साक्षी तो समन्वयके ही पक्षमें है।

कुछ प्रस्ताव पास हुए और कुछ सन्देश भेजनेवालोंके नाम सुनाये गये। बहुत बड़े-बड़े नाम थे पर जनताने सिर्फ दो नामोंमें ही दिलचस्पी ली: एक श्रीरासबिहारी बोस और दूसरा राजा महेन्द्रप्रताप। श्री बोसका सन्देश सुनानेका आग्रह हुआ तो कृपलानीजीने अपने दुर्वासा-स्वभावके अनुसार समयकी कमीका डण्डा दे दिया पर जवाहरलालजीने इसे महसूस किया और अपनी भाषामें सन्देश सुना दिया।

स्वागतके किसी सज्जनकी ओरसे नेताओं, प्रतिनिधियों और स्वयं-सेवकोंको दूसरे दिनके लिए दावतकी घोषणा लाउडस्पीकरपर हुई। एक पत्र-प्रतिनिधिने पूछा: 'और प्रेस?' पण्डितजीने हँसकर कहा: 'वो परदेमें था पड़ दिया।' मैंने कहा: मेज़बान अपने रुपयोंकी रसीद चाहेगा तो प्रेसको दावत देगा ही। दावत नहीं मिली और पत्रोंमें उसका कहीं जिक्र भी नहीं हुआ!

बस इसी दिनकी एक घटना और — जब पण्डितजी अपना भाषण

पढ़ रहे थे तो एक तरफसे टीनके पिटनेकी धम-धम आवाज आयी। कुछ स्वयंसेवक दौड़कर बाहर चले गये। आवाज फिर आयी और कुछ और स्वयंसेवक बाहरकी ओर दौड़े। पण्डितजीका चेहरा तन गया — यह क्या बेहूदगी है ?

किसीने कहा 'कुछ धार्मिक लोग हरिजन प्रश्नपर अपना विरोध प्रकट कर रहे हैं।'

पण्डितजीने जनसमूहसे कहा 'अगर आप वादा करें कि मेरे पीछे कोई नहीं आयेगा और सब अपनी जगह बैठे रहेंगे तो मैं इस विरोधको जाकर देखना चाहता हूँ।' बहुत-से हाथ उठ गये। पण्डितजी वेदीसे उतरे और भीड़के बीचकी राहसे उस आवाजकी तरफ लपके — एक दम अकेले। कुछ स्वयंसेवक जरूर पीछे चार कदम चले कि पण्डितजीने मुड़कर उन्हें झिड़का — 'बढ़े कहींके!'

वे रुक गये। पण्डितजी गये और लौट आये। माइकपर आते ही बोले 'मेरे जानेसे पहले ही वे भाग गये।' और इस तरह हँसे कि सब हँस पड़े। सचमुच जनताके खिलाड़ी हैं जवाहरलाल!

११ अप्रैलको साढ़े पाँच बजसे ही कार्य शुरू हो गया। यह दिन बहुत व्यस्ततापूर्ण था। सारे महत्त्वपूर्ण विवाद आज ही होने थे। जवाहरलालजी आज मंचपर नहीं बैठे वेदीपर ही रहे और सारे विवादका सञ्चालन इस योग्यतासे किया कि वह उन्हींका हिस्सा था। जब एक वक्ता बोलना आरम्भ करता तो वे दूसरेको बुलाकर बैठा लेते। वक्ताओंसे भी उन्होंने कहा 'दिलचस्प बातें बहुत हैं। आप उन्हें छोड़िए और मतलबकी बातें कहिए।' दोनों पक्षोंके वक्ताओंसे उन्होंने इतना सुन्दर सिलसिला बाँधा कि वाह!

आरम्भमें जलियाँवाला बागके शहीदोंकी यादमें दो मिनिटका मौन रहा। सन् १९१९ को ११ अप्रैल हमारे राष्ट्रकी आत्मबलि। हम सभी मौन थे पर हममें कितने हैं जो उन पुण्यात्माओंके लिए बेचैनी

मालवीयजी भावुकताके आगार हैं। इस भाषणमें भी उसका परिचय मिला जब आरम्भमें ही उन्होंने कहा “मैं मरना चाहता हूँ, सच मानिए, मरना चाहता हूँ। पचास वर्ष पहले जो देखा था वही आज भी देख रहा हूँ और मरनेका समय आ गया है। तो श्रोताओंकी सहानुभूति एक लहर आ गयी पर जब उन्होंने विषादके स्वरमें कहा 'अपना तो यह धर्म रहा है कि जो समझमें आये कह दूँ आप मानें या न मानें' तो सचमुच मेरे हृदयपर एक चोट लगी। यह पूज्य मालवीयजीके अनुयायीविहीन नेतृत्वका करुण चीत्कार था। भाषणके बाद जरा बैण्डर ने बाजे बजे बिलकुल वैसे ही जैसे बजते थे — जनताके इस समुद्रमें बिना कोई लहर उठाये हुए।

गम्भीर मति उन्नत ललाट चढ़ी हुई आँखें हिन्दी भाषा और गुजराती लहजा सरदार पटेलका भाषण आरम्भ हुआ। पचहत्तर प्रतिशत मालवीय विरोध पचीस प्रतिशत प्रस्तावका समर्थन। भाषा तीखी कहनेका ढंग करारा — चोटीका सरदार सचमुच सिपाही है — 'मेरे भाई मालवीयजीकी बात तो मेरी समझमें ही नहीं आती पर मैं उन्हें सब दिनसे जानता हूँ। पटनामें उन्होंने तीस हजार सत्याग्रही स्वयंसेवक देनेकी कहा पर सारे भारतवर्षमें उन्हें मिला तीन स्वयंसेवक भी नहीं। सरदारको बहुत बार देखा है, पाससे भी दूरसे भी और मीठी-तीखी बातें भी की हैं पहलेसे बहुत बार पर कभी नहीं लगा कि उनके पास कुछ अपना सन्देश है। उनका नेतृत्व जीवन-दर्शनका नहीं जीवन-पद्धतिका है कर्मण्यताका है। वे कर्म क्रियायोगी हैं। काम करनेका उनका अपना तरीका है और उसीके कारण वे युग-पुरुषके अनन्य भक्त और अनन्य विश्वासपात्र हैं।

श्री पट्टाभि यहाँ हिन्दीमें बोले — खूब बोले और खूब जमे। सबने चाहा कि वे हिन्दीमें बोला करें। पदग्रहणके विरोधियोंमें सरदार शार्दूल सिंह कवीश्वरका भी एक अपना स्थान था — इस दलका नेतृत्व उन्हींके हाथोंमें था। गठा हुआ बदन कपाटपर चिन्ताकी रेखाएँ और चेहरेपर

सिद्धान्तधर्मकी नम्रता यही उनका हुलिया। प्रस्तावके समर्थनमें पन्तजी भी खूब बोले – सदाकी भाँति। वे महान् धाराप्रवाही हैं पर सत्यमूर्तिमें बिलकुल भिन्न शैलीके वक्ता अनथक लड़ाकू पराजयकी मनोवृत्तिसे दूर मितभाषी और गहन-गम्भीर।

अब नम्बर आया वोटिङ्गका और पहले हाथ उठे परग्रहणविरोधी भी सम्पूर्णानन्दके संशोधनपर जैसे सैकड़ों सफ़ेद झण्डे ऊपर उठे हों। पण्डित जी अपने हाथकी पीली पेन्सिलसे इशारा कर उन्हें गिनने लगे इस फुरतीसे कि जैसे मशीनसे गोलियाँ निकल रही हों। गिनकर बोले 'ठीक गिनती तो नहीं हो सकती पर मेरी 'एक आइडिया' है कि संशोधनके पक्षमें दो सौ पचास और विपक्षमें चार सौ पचहत्तर रायें हैं।' सम्पूर्णानन्दजीने डिवीज़नकी माँग की तो दोनों पक्षोंके लोग अलग-अलग घेरोंमें बैठे – सभाके नेता भी घेरोंमें गये। जमनालालजी बजाजने वेदीके नीचे आकर पुकारा 'जवाहरलाल ए जवाहरलाल प्रतिनिधियोंसे कह दो कि हाथ उठानेके बजाय अपना प्रतिनिधि-टिकिट हाथमें रखें।' सोचा – आशुबुद्धि जमनालालजीका 'बीदस' कितना सामयिक है, कितना सार्थक। संशोधनके पक्षमें दो सौ तिरपन और विपक्षमें चार सौ सत्तासी मत आये। कितना सही था जवाहरलालजीका एक आइडिया!

तीसरे दिन मैं चला आया पर दो दिनमें ही जो कुछ देखा वह सब कह सकना कहाँ सम्भव है?

०

पहाड़ी रिक्शा

वह आ रही है पास ही एक रिक्शा, जिसमें बैठी हैं दो परियाँ और उन्हें खींच रहे हैं पाँच जन!

वह आ रही है दूर एक रिक्शा, जिसमें बैठा है एक सेठ और उसे खींच रहे हैं चार जन!

वह आ रही है नीचेकी ओर स्वयं दौड़ी-सी एक रिक्शा, जिसमें बैठा है एक बूढ़ा और उसे खींच रहे हैं चार जन!

वह आ रही है ऊपरकी ओर घिसटती-सी एक रिक्शा, जिसमें बैठा है एक बीमार और उसे खींच रहे हैं चार जन।

रिक्शाको देखते ही आँखोंकी राह दिलमें उतर जाते हैं ये रिक्शा-कुली! जो पेटके लिए मनुष्य होकर भी बैलों या घोड़ोंकी तरह मनुष्यको ही खींचते हैं।

पिछले वर्षोंमें जब-जब पहाड़पर आया हूँ, रिक्शाएँ देखी हैं और तभी तब सोचा है कि कितने दयनीय हैं ये जन, जो पेटके लिए रिक्शा खींचते हैं!

उस दिन भी एक बेंचपर बैठा मैं देख रहा था कि रिक्शाओंका एक समूह चला आ रहा है, पर मेरा ध्यान रिक्शाके कुलियोंपर नहीं, रिक्शापर ही जा टिका।

कितना बोझ होता एक रिक्शामें? चार-पाँच मन! और जो सवारियाँ? आम तौरपर ढाई-तीन मन! तब पूरा बोझ हुआ सात-आठ मन और कभी-कभी दस मन। इसका अर्थ हुआ कि रिक्शाके प्रत्येक मजदूर पर डेढ़ मनसे दो मन!

मैं कुछ सोच रहा हूँ सोचे जा रहा हूँ कोई बड़े कामकी बात है, पर धुँधली-सी है और पकड़में नहीं आ रही। तभी देखता हूँ सामनेकी ऊँची कोठीपर आटेकी पूरी बोरी अपनी कमरपर लिये और सिरपर लिये पट्टेके सहारे उसे सँभाले एक मजदूर चढ़ा जा रहा है। उसे देखते ही मेरे भीतर जो धुँधला विचार घुमड़ रहा है, उसे स्वरूप मिल गया है। अब मैं अपनेसे पूछ रहा हूँ रिक्शाका मजदूर दो मनका बोझ पहियोंके सहारे खींचता है और यह मजदूर ठीक दो मन बोझ अपनी कमरके सहारे ही लिये जा रहा है फिर रिक्शाका कुली दयनीय क्यों है? स्वयं मार्क्स राष्ट्रपति हों या महात्मा गान्धी ऊपर बोझ ले जानेकी जरूरत रहेगी तो सामान ऊपर जायेगा ही और कोई-न-कोई उसे ले जायेगा भी फिर इसमें दयनीयता क्या है? कुछ नहीं तो फिर रिक्शामें ही क्या खास बात है? एक मजदूर दो मन आटा ले जा रहा है एक मजदूर एक आदमीको जिसका बोझा दो मन है, खींचे लिये जा रहा है इसमें क्या कुछ अन्तर है? मजदूर आटा ऊपरसे या लाये कपड़ोंका ट्रंक ले जाये या रातका बिस्तरा और इसी तरह वह ले जाये एक आदमीको उसे उसकी मजदूरी मिलेगी। मुझे याद आया अस्पतालमें जो अनाथ लाश मर जाते हैं उन्हें श्मशान ले जानेका काम भी मजदूर करते हैं और अपनी मजदूरी ले लेते हैं। फिर जब आटा ढोनेमें दयनीयता नहीं यहाँतक कि मुरदा मनुष्य ढोनेमें भी दयनीयता नहीं तो यह कौन-सी दिमागपी है कि जीवित मनुष्यका ढोना ही दयनीयता है?

जो बात पिछले अनेक वर्षोंसे मनके लिए साधारण रही है वह आज असाधारण क्यों बन गयी? रिक्शा देखकर सदैव रिक्शा-कुलीपर जो दया आती रही है इस प्रकारके कन्द करनेके लिए मनमें करुणा और विरक्ति का भाव उमड़ता रहा है क्या वह एक भद्दी भावुकता ही थी? मन यह माननेको तैयार नहीं होता पर मस्तिष्क तो आज जैसे अपनी बात पर अड़ ही गया है — वह उस भावुकताकी खिल्ली उड़ाकर पूछता है — जब मुरदा

थामनेकी शक्ति और उत्साह अब क्षीण हो गया है और मस्तिष्क थक चला है। मन अब कोई नयी बात चाहता है। मैं अपनी बैंचपर-से उठकर चल पड़ा हूँ धीरे-धीरे और सुस्त मन जैसे भर-सा गया है यह पछाड़ खाकर। चला जा रहा हूँ चला जा रहा हूँ। कुछ सोच रहा हूँ कुछ सोच भी नहीं रहा हूँ।

सामनेसे आ रहा है एक मजदूर – कोयलेकी एक कण्डी कमरपर लिये दूसरी ओर जा रहा है एक मजदूर कमरपर ही लकड़ीका भारी गट्ठा लिये। वे जा रहे हैं तीन मजदूर साथ-साथ बड़े-बड़े ट्रंक और बिस्तर लादे।

मैं देख रहा हूँ और सोच रहा हूँ कि कितना बोझ उठाते हैं ये पहाड़ी बन्धु और तब याद आया उस दिन कुफरी बाजारमें ढालपर बक्सा बैठ गया और पास्लेन्टवाला भी न मिला तो मैंने उसे अपनी गोदमें उठा लिया था। हाँ उठा तो लिया था पर ऊपर पहुँचाना मुझे मुश्किल हो गया था। ऊपर पहुँचकर जब लम्बे-लम्बे साँसोंके बीच मैंने उसे उतारा तो मुझे लगा कि मेरी छातीसे भूत उतरा और तब मेरे मुँहसे निकला कम्बख्तमें कितना बोझ है!

अब मेरे मनमें एक शब्द है बोझ और यह एक गूँजकी तरह मेरे मन-के गुम्बदमें भर रहा है।

एक बार किसी गाँवमें जब मैं गया तो वहाँ एक पिताने अपने निखट्टू पुत्रको 'धरतीका बोझ' कहा था और मरे मग्ह पुत्रका पत्नीकी मृत्युके बाद किसी आत्मीयने ही 'छातीका बोझ' कहा था।

मनके गुम्बदमें भरी गूँजमें अब ये दो नयी ध्वनियाँ आ गयी हैं – धरतीका बोझ और छातीका बोझ।

धरतीका बोझ! छातीका बोझ!!' दोनाम मनकी चोट चुभा है ता बोझ बनना बुरा है! बोझ बनकर जीना दयनीय है!

बूढ़ों एवं बीमारोंके लिए मयाना, बच्चोंके लिए बास्केट और मूर्च्छितों एवं मृतकोंकी सेवाके लिए स्ट्रेचर रहते ही। रिक्शाएँ भी रहेंगी पर संग्रहालयोंमें जहाँ भावी पीढ़ीके बच्चे उन्हें देखेंगे और सोचेंगे – ओह! यह भी एक युग था जब मनुष्य भी कुछ पैसोंके लिए मनुष्यों-द्वारा ही बोझकी तरह ढोया जाया करता था।

○

जैसे जनमपत्री मांगोंकी बन्दनवार बँधी हो। खुली मोटरमें जवाहरलाल एक ओर खड़े, तो दूसरी ओर खड़े जिसने उन्हें अपलक-भर देख लिया निहाल हो गया जो रह गया — चूक गया लुट गया। मैं साथ रहा हूँ गोपियोंमें भी कृष्णके लिए इससे ज्यादा बेचैनी और क्या होगी।

इसी तरह हजारों बच्चे चौराहोंको पार करते अभिनन्दना लेते अभिनन्दना लेते व राष्ट्रपति-भवन जा पहुँचे और मोटरसे उतरकर कमरेमें चले गये। कमरेमें गये कि और आये कुछ खोजते — मेरी छड़ी कहाँ है? मोटर से छड़ी आयी तो उसे सँभालते-से बोले 'हाँ मैं इसे नहीं भूल सकता यह मेरा साथी है।

जवाहरलाल हमारी कल्पनामें चिरयुवा हैं। हमने विमानसे उतरते देखा था फिर मोटरसे और अब छड़ीको सँभालते और तब सोचा बुढ़ापा जीत रहा है। और तभी सोचा बुढ़ापा बेचारा क्या जीतेगा जवाहरलालको हमारे पास जीत रहे हैं। हमने उसके अफसोस वश बुढ़ें-के मसूड़ेमें खड़ा कर दिया है और बुढ़ेंमें किसका दाँत नहीं चुभता!

दूसरे दिन सुबह!

गान्धी-भवन इन्दौर-कांग्रेसका अपना निवास कार्यालय और यहीं राज्योंकी असेम्बलियों कौंसिलों और पार्लमेंटके काँग्रेसी सदस्योंका कन्वेन्शन। देश-भरसे आये कोई एक-सवा हजार सदस्य उपस्थित जिनमें अनेक मन्त्री और अनेक मुख्य मन्त्री। वातावरण सजीव और सरस!

गान्धी-भवन पहुँचते ही बहुत-से पत्रकारोंका जमाव मिला श्री बलवन्तराय मेहताने सब प्रेस-पास देखकर यहाँके लिए पचास रख लिये हैं और बाकी कैन्सिल कर दिये हैं आपका नाम उसमें नहीं है। और इन उत्तर पानेवालोंने देखा उनसे हीन कोटिके पत्रकारोंका नाम उस सूचीमें है।

पता नहीं श्री मेहताको यह बापुओंका क्यों रुख और व्यवस्था ही

इसका उद्देश्य था तो भाई-मतीजोंको परमिट देनेकी वसील बहुनियतसे ऊपर वे क्यों न उठ सके । व न उठें और जायें बहन्नुममें पर उनके नाम-से यह कांग्रेस को डूबती जाती है उसे कैसे भूला जाये ?

गान्धी-भवनके बाहर भीड़-ही-भीड़ पर व्यवस्थित – हरेक आदमी कायम । ये आये उत्तर-प्रदेशके मुख्य मन्त्री पन्तजी और यह मध्य-प्रदेशके रविशंकर शुक्ल दोनों लम्बे-चौड़े तो यह आ गये हैदराबादके मुख्य मन्त्री श्री रामकृष्ण राव नाटे-ठुट्टे और ये वे और वे ये जनता शान्त है पुलिसके अधिकारी सतर्क हैं ।

इस शान्तिमें कहींसे धमकी एक चौंक और फिर लहर – पण्डितजी आ गये और तब बाढ़ – आ गये आ गये !! बाढ़ बन्धनोंमें कब बँधी है पुलिसके प्रबन्ध और कार्यकर्ताओंकी कोशिश बेकार – लोग उमड़ आये जवाहरलालकी मोटरके चारों ओर ।

मोटरमें ड्राइवरके पास श्री गोपीकृष्ण हाण्डू डिप्टी डायरेक्टर इण्टैली जेन्स और पीछे पण्डितजी और श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित। हाण्डू अपनी जिम्मेदारियोंसे परेशान पर हमेशाकी तरह अपनी सूझ और तमीज लिए सधस्वी उन्होंने बलपूर्वक पण्डितजीको सीटेपर खड़ा किया ।

बस यही इस अधिवेशनका सर्वोत्तम दृश्य ।

पण्डित जवाहरलाल नेहरू गान्धी-भवनके दुर्मंजिले छज्जेपर और नीचे कोई आठ-दस हजार आदमी ! दस हजार आदमी तो बीस हजार आँखें और दस हजार दिल दिमाग और चेहरे ! इन बीस हजार आँखोंमें एक तसवीर जवाहरलाल इन दस हजार दिल-दिमागोंमें एक धुन जवाहरलाल और यह चेहरे ? जर्मनीसे छप्पे पड़ते-से खुमोश खिले-से जैसे हजारों कैमरे एक साथ एक ही आदमीका फ़ोटो ले रहे हों !

ओह कितना आकर्षण है जवाहरलालमें ! हर आदमी उसे देखने को बेचैन है दीवाना है पर इस आकर्षणका रहस्य क्या है ?

जवाहरलालकी राजनैतिक ईमानदारीसे आमपक्ष रोज चैलेंज करता

है और उसकी शासन-चातुरीकी आलोचना घर घर और गली-गली है — जनताकी भाषामें यही तो है जिसके राज्यमें कोई काम बिना रिश्वत या सिफ़ारिशके नहीं होता और यहीं तो उन कांग्रेसियोंका प्रभाव है जिन्हें लोग कोसा करते हैं फिर जवाहरलालके प्रति जनताके आकर्षणकी निशानी कहाँ है ? यह कोना कौन-सा है, जिससे जनताको जवाहरलाल आकर्षक दिखाई देता है ?

मुझे लगता है कि जवाहरलालकी नैतिक ईमानदारी-व्यक्तिगत चरित्र विरोधियोंके लिए भी 'अनचैलेंजेबल' है, उसकी सिन्सियरिटी उनके लिए भी विश्वसनीय है। लोग महसूस करते हैं कि यही है जो नयी ज़िन्दगी नया समाज और नये भारतके निर्माणके लिए बेचैन है यही है जिसने दुनियामें भारतकी शान चमकायी दूसरे शब्दोंमें यही एक है जिसकी जनताके जीवनमें दिलचस्पी है — गान्धीके बाद यही तो है जो देशकी पतवार थामे है और बस यहीं उस आकर्षणकी नींव है। मैंने सोचा तो एक ईमानदारी इतनी बड़ी होती है!

कन्वेन्शनके स्वागताध्यक्ष और मध्यभारतके मन्त्री श्री मिश्रीलाल गंगवालका स्वागत-भाषण उतना ही सस्ता था जितने वे स्वयं।

पण्डित नेहरूने अपने भाषणमें पार्लमेण्टरी परिषद् स्थापित करने और कांग्रेसका एक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित करनेकी बात कही। वे बोल रहे थे पर भाषणमें वे न थे। उनकी मूड कुछ यों थी — यहाँ आ गया तो कुछ कह ही दूँ।

सचाई यह है कि यह कन्वेन्शन कुछ यों ही शुरू किया गया था। इसके एक प्रस्तावमें कहा गया था कि भिन्न-भिन्न राज्योंके कांग्रेसी सदस्योंमें सहयोग होना चाहिए। और दूसरेमें एक पत्र निकालनेकी बात पर यह काम तो एक दफ़्तरसे ही हो सकता था। यही कारण है कि इन प्रस्तावोंके लिए सदस्योंमें कोई उत्साह न था। मंचसे जब पण्डित नेहरू और काटजू और पाटिल बोल चुके तो पण्डितजीने सदस्योंसे कहा 'प्लेटफ़ार्म तो

आज उनका सिर सजाती है। महज कपड़ेकी तीन पट्टियाँ है मगर इस झण्डेमें आपसकी एकता, एक-दूसरेका विश्वास, मुहब्बत और मुल्ककी तरक्कीकी भावना छिपी है। झण्डा किसी एक नगर या एक प्रान्तकी धरोहर नहीं, वरन् वह देशकी धरोहर है, समस्त धर्मों, समस्त जातियोंकी अपनी सर्वोत्तम चीज है। आज हमें झण्डेको काम और मेहनतका भी प्रतीक बना लेना चाहिए।

यों कन्हैयालाल जालीवालके स्वागत भाषणके बाद पण्डित जवाहरलाल नेहरूका हिन्दी भाषणसे खुला अभिभाषण आरम्भ हुआ। वे अब नयी प्रयोगशालाओंके भावी सुफलकी चर्चा कर रहे थे कि बादलका पानी बरस पड़ा और पण्डालके ऊपरका टीन टपाटपकी ध्वनिसे धमधमा उठा। पानी बरसनेकी खुशीमें जनताने जवाहरलालकी जय गुंजायी और तालियाँ गड़गड़ा दीं।

अब नेहरूजी चौंककर कभी वे देखते हैं ऊपर तो कभी नीचे, यह आवाज कहाँ है? उनकी समझमें बात आयी कि वे जोरसे हँस पड़े और तब बोले "मुबारक है आपको।

पण्डितजी आज देशके सर्वमान्य नेता हैं। उन्होंने भाषणमें क्या कहा यह देखना साधारण है। असलमें देखना यह है कि उनके भाषणकी प्रतिध्वनियाँ क्या हैं और आज जनताके मनमें जो जिज्ञासाएँ हैं, वे प्रतिध्वनियाँ उनका क्या उत्तर देती हैं।

आज जनतामें जो आलोचना है, चे-म-गोइयाँ हैं उनका सार है—देशकी पाँच वर्षोंकी स्वतन्त्रतामें अभी सरकारने यह नहीं किया, वह नहीं किया, यह कमी है, वह कमी है।

जवाहरलाल नेहरूके भाषणकी प्रतिध्वनि है कि ठीक है आपकी बात, पर हम प्रजातन्त्रकी जिस पद्धतिकी नींव रख रहे हैं, उसमें यह जरूरी है कि हम तो करें ही, आप भी करें।

संक्षेपमें पण्डित नेहरू यह मानकर चलते हैं कि आज हम जनताके

निर्भर होना चाहिए; ऐसी परिस्थिति उत्पन्न की जानी चाहिए जिसमें कि समाज राज्यके विभिन्न संगठनों एवं सहकारी संस्थाओं-द्वारा उद्योग तथा व्यापारके विकास एवं संचालनमें और भी अधिक हिस्सा ले सके। उत्पादन और व्यापारकी प्रतियोगिता तथा निजी लाभके बदले सहकारिता तथा समाज-सेवाके आधारपर आश्रित किया जाना चाहिए। इस बातके लिए दृष्टिकोण और शासनकी प्रक्रियामें परिवर्तन और जनता-द्वारा अपनी क्षमताके अनुसार अधिकसे अधिक त्याग करनेकी आवश्यकता है।

इस प्रस्तावको कांग्रेसके इतिहासमें नया अध्याय कहा गया। श्रीमन्नारायण अग्रवालके समर्थनमें विषमताके प्रति विद्रोह तो न था, पर उसकी सरल चर्चा और उसे मिटानेकी बात भी स्पष्ट भाषामें कही गयी थी

'आखिर बड़े कारखाने भी मैनेजिंग एजेन्सी या किसी व्यक्तिके हाथ क्यों रहें, वे को-आपरेटिव व्यवस्थामें क्यों न हों।

मजदूर प्रश्नोंके विशेषज्ञ नेता श्री वसु मानते इस स्पष्टताको थोड़ी अखरती थी, जब कहा 'इस प्रस्तावमें कांग्रेसका मानस शासनके सामने आया है। वह मानस यह है कि आजकी समाज-व्यवस्थाका ढाँचा बदले। पूँजीवादी समाज-व्यवस्थाका आधार लेकर हम नहीं पनपे और इसे बदले बिना हम जनतामें सहकार नहीं जगा सकते।

प्रस्ताव पास हो गया और इसका अर्थ हुआ कि अब कांग्रेस यह बखूबी समझ गयी है कि या तो वह कोई तेज कदम उठाये और या हट जाये। सचाई यह है कि इस प्रस्तावपर कांग्रेसी शासन जो कुछ करेगा, वही कांग्रेसके जीवन-मरणकी कसौटी होगी।

कलकत्तेके समाज-सुधारक श्री बसन्तलाल मुरारका इस प्रस्तावमें यह संशोधन रखा कि एक व्यक्तिकी आमसे दूसरे व्यक्तिकी आय पचास गुनीसे अधिक न हो। उन्होंने कहा, मजदूर और मैनेजरकी तनख्वाहमें जो विषमता है, वह दूर हो।

संशोधन गिर गया, पर उनके प्रभावहीन भाषणका जनतापर जो

प्रमाण पड़ा वह सब प्रभावशाली व्यक्तियोंके भाषणोंसे अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुआ और तालियोंसे पण्डाल गूँज उठा। इसका अर्थ हुआ कि जनता के हित राष्ट्र या समाज-व्यवस्थाके नव-निर्माणका कोई काम कांग्रेस हाथ-में लेगी तो जनताका आजका अवसाद उत्साहमें बदल सकता है और उसका पूरा सहयोग भी मिल सकता है। तो कमजोरी शिखरमें है नींवमें नहीं और वह नींव क्या किसी दिन ऊबकर स्वयं न हिल उठेगी?

प्रस्तावके ठीक बीचमें एक रेला पण्डालमें आया और अव्यवस्था फैली तो स्वयंसेवक दौड़े कि नेहरू भिन्नाये हुए माइकपर आये — 'यह मीटिंग है या हम्मीरका बाजार कि जब चाहा चले आ गये या भाग पड़े। मैं इसे गवारा नहीं कर सकता। जो बैठना नहीं चाहते वे बाहर घूमें या घर जायें।' और जोरसे मचलकर स्वयंसेवकोंसे बोले — 'बैठ जाओ कोई उठे तुम बैठे रहो — अब मैं किसीको खड़ा न देखूँ, साँप भी उठे तो तुम मत उठो।'

लोग हँस पड़े। जवाहरलालजीकी घुड़कीपर भी लोग क्यों हँसते हैं? उनकी आत्मीयतामें सबका अखण्ड विश्वास है और यह विश्वास ही उस ममताकी जड़ है जो उनके प्रति सबमें फैली है।

इस मस्तानी गुस्सेके तुरन्त बाद बोले — 'श्री गुलजारीलाल नन्दाकी तबीयत बहुत अच्छी नहीं है, गला भी उनका पड़ा है, पर उनमें इतना जोश है कि वे कुछ-न-कुछ कहना ही चाहते हैं।' और वे इतनी मासूमीसे मुसकराये कि सारा पण्डाल हँस पड़ा और हजारोंमें झिम्मी मुसकराहटें जाग हो गयी।

यह हँसी ही जवाहरलालजीकी शक्तिका स्रोत है। वे नाराज होते हैं और हँस पड़ते हैं, सोचते हैं और हँस पड़ते हैं, थकते हैं, ऊबते हैं और हँस पड़ते हैं।

ग्रामप्रमुख प्रथा-विरोधी प्रस्तावकी सूचना पाते ही पण्डालमें शोर उबल पड़ा और जब अनुमोदकने कहा आज हम एक प्रस्ताव पास करें तो

पण्डालमें बाढ़-सी आयी पर पण्डितजीने एक ही वाक्यमें इस बाढ़को बाँध दिया — 'आप सब इसपर राय दें, पर मेरा मत तो इसके विरोधमें ही होगा, इसलिए एक मतसे तो यह पास नहीं हो सकता। सरकारोंके बारेमें नहीं बहस करते। मैं भी इसे बदलना चाहता हूँ, पर इस तरह कि भारत सरकारकी शानके लायक हो यह।

यही नेहरू नेतृत्वकी पूरी भूमिमें थे। आक्रमक प्रस्तावके पक्षमें था पर नेतृत्व विरोधमें। जवाहरलालजीने ठीक ही कहा, कभी हमें जनताके पीछे चलना पड़ता है, पर उसे नेतृत्व देना भी हमारा काम है।

प्रस्ताव वापस ले लिया गया, पर इसमें सन्देह नहीं कि राजकुमार प्रथा और प्रीवीपर्स दोनोंपर पचास आगेकी यह घोषणा हो गयी।

अधिवेशन देश मनुष्यताके आश्वासनपर समाप्त हो गया और मैं बाहर निकला। तीन सिपाही पण्डालके सामने ही भीख माँग रहे थे, जैसे किसी मामताने पूछ रही थी, तुम्हारी यह आर्थिक व्यवस्था हम तक कब पहुँचेगी? मुझे लगा कि यह कांग्रेस और कोचनके प्रोग्रामको दिया गया बहुत-का चैलेंज है और इस अटल चैलेंजपर दिया जानेवाला जवाब ही कांग्रेसके जीवन-मरणका निर्णायक होगा, पर आजकी शिथिलता, आपसी खींचतान, तू-तू मैं-मैं और ला-लामें कांग्रेस सही समयपर यह जवाब दे सकेगी?

o

मेरे मकानके आस-पास

जहाँ मैं आजकल रहता हूँ उस स्थानकी माप-जोख (सर्वे) इस प्रकार है एक विशाल और शानदार कोठी दोमंजिली। ऊपरके हिस्से में रहते हैं एक अप-टु डेट सज्जन जो अपने व्यापारके सिलसिलेमें बाहर से आकर यहाँ रह रहे हैं। कोठीके मालिक उनके पार्टनर हैं। पुराने रईस हैं अफसरोंमें भी मिलते हैं। आपकी पत्नी अद्भुत हैं। अपनी बच्चीके साथ पढ़ रही हैं सेकेण्ड ईयरमें। बड़ा सुखी परिवार है।

नीचेके हिस्सेमें स्वयं कोठीके मालिक रहते हैं। लाखों रुपयोंका कार बार है। स्वयं शिक्षित हैं पत्नी सामाजिक क्षेत्रमें यश-प्राप्त है। किसी प्रकारका अभाव नहीं दुःख नहीं सब भगवान्की कृपा है।

पासके क्वार्टरमें हिन्दीके एक यशस्वी पत्रकार रहते हैं। सहृदय सज्जन हँसमुख और सेवाशील। इनके परिवारमें एक पुत्र है पुत्री है विधवा भाभी है। पासके क्वार्टरोंमें और दो भले परिवार रहते हैं और सामने ही रहता है कोठीका भंगी अपने क्वॉर्टरमें। इसका परिवार बड़ा है। कई लड़के लड़कियाँ बहुएँ, बच्चे।

जरा बचकर सामने ही छह क्वार्टर हैं जिनमें किरायेदार रहते हैं। सभी परिवार शिक्षित हैं, परीक्षित हैं कमाऊ हैं। बराबरीमें दो कोठियाँ हैं जिनमें बड़े आदमी रहते हैं जो सब या सुखी हैं प्रसन्न हैं। सामने वाली तीन कोठियोंमें भी इसी प्रकारके परिवार रहते हैं जिनके यहाँ अभाव नहीं अभियोग नहीं जो आरामकी जिन्दगी गुजारते हैं और जाड़ें जिन्हें सुखी रहना चाहिए।

अपने पलंगपर पड़ा मैं अक्सर सोचा करता हूँ इस सारे क्षेत्रम

सबसे छोटा, सबसे गरीब और जिम्मेदारियोंके बोझसे दबा जो परिवार है, वह उस भंगीका है। गाढ़ी भाव, बड़ा कुनबा, अछूतपनकी ग्लानि, अशिक्षा और अस्वास्थ्य। सारे वातावरणमें वह ऐसा है जैसे हिमाच्छादित कैलासके धवल शृंगोंके मध्य पड़ा कोई अँधेरा गड्ढा! उसके बच्चोंको मैं अपने पास बुला लेता हूँ, पैसे देता हूँ, खिलाता हूँ, कहानियाँ सुनाता हूँ। पहले तो वे झिझकते थे, अब झेंप भी गये हैं। रास्तेमें कुरता पकड़ लेते हैं और कभी-कभी तो जबरदस्ती पैसे वसूल करते हैं। इनकार करनेपर कहते हैं, अच्छा खेल दिखाओ!

मैं अपने कमरेमें पड़ा सोचा करता हूँ, यह कैसी समाज-व्यवस्था है जिसने एक मानवको कैलासका धवल शिखर और दूसरेको अन्धकार-भरा गड्ढ़ा बना छोड़ा है। और हम कैसे हैं कि नरकका यह बोझ ढोते चले जा रहे हैं, करवट लेकर उसे छातीपर-से उलट नहीं देते? यह परिवार हमारी समाज-व्यवस्थाका एक नमूना है—मर्मबेधी और स्पष्ट! पता नहीं इस परिवारमें प्रतिभाके कितने वरद पुत्र हैं, जो शासक, व्यापारी, लेखक और इंजीनियर हो सकते हैं, पर नहीं, उन्हें पाखाना ही ढोना है और हमारे इन 'ऊँचे' परिवारोंमें न जाने कितने अकर्मण्य और बुद्धू हैं, जिन्हें पाखाना ढोना चाहिए, पर नहीं, वे सदा बाबू और पण्डित ही रहेंगे। यहाँ कोई 'क्यों' नहीं कह सकता, क्योंकि यह समाज-व्यवस्था है, धर्मकी आज्ञा है।

हम व्यापारकी धुनमें हैं, धनकी धुनमें हैं, नामकी धुनमें हैं, पर असलमें तो आज एक ही धुन चाहिए कि यह समाज-व्यवस्था कैसे बदले और इस परिवर्तनमें हम अपना हिस्सा कैसे अदा करें।

फिरि आया रे बदरिया सावनकी!

सावन प्रकृतिका यौवन है और इस सप्ताह तो यह यौवन पूरे उभार के साथ उतरा है। रोज रिमझिम झमाझम लगी रहती है। 'बदरिया धी

इस बार कुछ ऐसी जमी है कि बस जमी ही है। पृथ्वीपर हरीतिमा छा गयी है, वृक्षोंपर अमृत बरस पड़ा है, पुष्कला जैसे समुद्रमें जा डूबी चारों ओर सावनी जोबन और रस। हाँ बस रस-ही-रस! आखिर यह सावन है, जिसमें कोई सूरदास हो जाये तो बस उसे हरा-ही-हरा सूझे। कहते हैं सावनमें मनहूसाम भी मस्तीकी रमक आ जाती है।

यह वह मौसम है, जिसमें सूखे गड्ढे भर जाते हैं जबकि पृथ्वी भी मण्डकोंके रूपमें मुखरित हो उठती है और सामान्य पेड़ भी अपनी झिपरियों-के स्वरमें मुखरित हो पड़ते हैं। सावन नीरसता निस्पन्दता जड़ता अरसता और मनहूसियतके विरुद्ध एक प्राकृतिक विद्रोह है विद्रोह और क्रान्ति! ओह यह सावन!

मैं अपने पलंगपर पड़ा सुन रहा हूँ किरि भाभी रे बदरिया सावन का। लड़कियाँ और बहुएँ मिलकर गा रही हैं। कोमल कण्ठके साथ ढोलककी ठुमक मिलकर एक समा बाँध रही है जिसमें रूप है, रस है जीवन है मौसम है पर कहीं दूर भी जिसमें वासनाकी छाया नहीं है।

सामने मारवाड़ी परिवारने अपने मकानके सामने बरसों पूर्व जन्मकी साक्षी सो बूढ़ी बरगदकी कमर-से झुके तनेमें एक झूला डाल रखा है, उसमें रातके समय परिवारकी कन्याएँ और बहुएँ झूला झूल रही हैं गा रही हैं और अपनी छोटी-सी दुनियाको टटोल रही हैं। पासके सब मकानोंकी रोशनी बुझ गयी है आवाजें सो गयी हैं और यह संगीत सारे वातावरणमें मौनमिस्रीकी भीनी गन्ध-सा व्याप रहा है। पता नहीं और कोई भी इसे सुनता है या नहीं पर तल्लीन हुआ मैं सुन रहा हूँ। मेरी देह निश्चय ही इस समय इस कुक्षमें है पर मन फिर अतीतके उस गृहस्थमें रम रहा है जहाँ प्रतिदिन कोई-न-कोई पर्व-त्यौहार अतिथि रहता था और जिसकी हर कड़ोम मौनकी गाँठ थी – हमारा जीवन ही तब मौनमय था।

मैं अपने पलंगपर पड़ा सोच रहा हूँ। सावनकी यह मस्ती क्या इसी दीन परिवारपर बरसती है? यह सबमें गरीब है, हीन है अभाव-ग्रस्त है

दुखिया है फिर भी सावनकी इस फुहार भरी अंधेरियाके तले यही क्यों गीतमय है ? जिनके घरम धन भरा है, कोई अभाव नहीं जो शिक्षित हैं चतुर हैं जिन्हें संगीतका ज्ञान है, 'टस्ट' है, जिनके यहाँ रेडियो है ग्रामोफोन है सिनेमा जिनके जीवनकी एक जरूरत है, उनके महलोंके दीप्तिमान् बल्ब बुझे पड़े हैं और इस गरीबकी झोपड़ीका यह टिमटिमाता दीपक अभीतक प्रकाश-दान करता जा रहा है। क्या सावन इसी झोपड़ीका अतिथि है ? उन ऊँची अट्टालिकाओंसे यह रूठ गया है ?

सघन कण्ठोंका यह संगीत मेरे रोम-रोममें पुलक बनकर छा रहा है और प्रत्येक पुलकमें उसीका स्पन्दन मुझे सुनाई देता है। कहीं कोई दूसरा स्वर नहीं है, छन्द नहीं है, जैसे यह सारी सृष्टि ही इस समय गीतमय हो उठी है।

और तभी भावनाके उस घने आवरणमें भी जरा सचेत-सा मैं सोच रहा हूँ। इस दैवी चमत्कारका स्रष्टा कौन है ? यह अमृत-वर्षा समाजके इस आँगनमें कौन कर रहा है ? मन मेरा कराह उठा है, यह देखकर कि उस स्रष्टाको मेरे समाजने कुछ नहीं दिया जो दिया बस छिन-ही-छिन लिया। तभी एक प्रश्न मनमें झाँक उठता है समाजका यह विषपायी सावनकी इस अँधियारीमें अमृतकी वर्षा कर रहा है और ये जो चारों ओर समाजका अमृत पीनेवाले सो रहे हैं अमृतकी इस वर्षामें भी निष्प्राण हैं ? यह क्यों ? और मन मेरा जैसे सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म हो समाजकी तह-तहमें उतरा जा रहा है।

हमारे समाजमें जो ऊँचा है, सम्मान्य है, उसने अपनेको प्रकृतिसे पृथक कर लिया है। उसके भीतर अवकाश नहीं व्यस्तता है। उसने स्नेह ममता दया बन्धुत्व और सौहार्दके स्थानमें पश्चिमसे उधार लेकर टैक्ट और धन-लिप्साको अपनेमें समा लिया है और उसकी दशा उस मृग-जैसी

है, जिसे प्रकृतिने साथ बीचसे काटकर मूलसे सम्बन्ध-विच्छिन्न कर दिया गया है पर ऊपरसे वो मूलके साथ मिला ज्योंका त्यों खड़ा है।

अब यह वृक्ष अपनी भूमपर ज्योंका त्यों खड़ा है पर उससे यह जीवन रसका ग्रहण नहीं करता। जीवन-रसके इस अभावमें वृक्ष सूखने लगता है, उसकी हरीतिमा सूखी पीतिमामें परिणत हो जाती है। हम विदेशका हरा रंग और वार्निश लेकर उन सूखे पत्तोंपर फेर देते हैं। अब ये पत्ते हरे हैं, चमकीले हैं और देखनेमें सुन्दर भी हैं पर उनमें अपना जीवन नहीं है। यही दशा हमारे सम्मान्य ऊँचे वर्गकी है। उसका सम्बन्ध व्यापारसे है, व्यवसायसे है, विज्ञानसे है, सभ्यतासे है पर यह व्यापार, व्यवसाय, विज्ञान और सभ्यता उसकी नहीं है, उसकी वास्तविकी नहीं है, सब विदेशियोंकी है, गैर है। फलस्वरूप उसमें रंग है, रौनक नहीं है, ऊँचाई है, उभार नहीं है, ग्रहण है, दान नहीं है, 'एपीमेण्ट' की बारीकियाँ है, कवितामें भावधारा नहीं है। उसका मानस-पात्र भरा है, अन्तरेल नहीं है, फिर वह छलके क्यों? जिस बादलमें उमड़न नहीं वह फुहार क्या देगा?

और मैं फिर अपने पलंगपर पड़ा अनुभव कर रहा हूँ सारा वातावरण उसी मधुर मस्त ट्रमकसे भरा है और सारी प्रकृति उसमें डूबी नहायी मग्न बालिका-सी सिमटी भावलीन है। मन मेरा फिर विचारोंमें डूब चला है। कलकी सृष्टि बीचमें है और इस पोत-बापकी मान-अमान-भरे जीवनमें। मैं उसी बीचवर कल्पनाकी दृष्टिसे एक सरसरी नजर डाल रहा हूँ। इस लघु-जीवनका सम्बन्ध अभी मूलके साथ है, यह मूलसे जीवनका रस ग्रहण करता रहता है पर इसके पत्तोंमें जीवनके विकासमें बरौनी और सामाजिक पराधीनताके कीटाणु हो गये हैं जो इसे पनपने लहलहाने नहीं देते। मूलसे इसे जीवन-रस न मिलता तो यह कभीका सूख जाता!

बीतकी रस-धारा बहते-बहते मेरी पलकें अब भारी हो गयी हैं और

गीत उनपर अपना डोरा डाल रही है। कानोंकी ग्रहण-शक्ति कम हो गयी है, मस्तिष्कमें तन्द्रा है और गीतका स्वर इससे और भी मीठा मधुर हो गया है — प्रकृति जैसे थिरकती-थिरकती धीरेसे नृत्यकी विशेष मुद्रा बनाकर स्थिर हो गयी है। मन वर्तमानकी धारामें छिटककर भावोंकी विश्राम रम गया है — निर्विचार मन भरा मन।

आँखें झप रही हैं और इसी खुमार भरी झपकपीमें मैं देख रहा हूँ दूरस्थ परिवर्तनके पंखोंपर बैठा भावी युगका धन्वन्तरि आ गया है। उसने यह लो एक ही झटकेमें उस मूलहीन वृक्षको गिरा दिया है और अपने कमण्डलसे उस विश्वात्माने दूसरे रोगी वृक्षपर अमृतकी बूँदें डालकर उसे रोगहीन जीवनपूर्ण फिरसे शस्यश्यामला कर दिया है।

आजके वातावरणसे और भी दूर अपने उसी पलंगपर पड़ा-पड़ा मैं तन्द्राकी झपकपीमें देख रहा हूँ। उस गिरे वृक्षको चीर-फाड़ लोगोंने ईंधन कर जलाना आरम्भ कर दिया है। साथ ही युवा वृक्षपर बौर लगा है जिसकी महकसे कोना-कोना भरा है और विश्व उससे फलागमकी आशामें आँखें बिछाये प्रार्थी है।

मेरी तन्द्रा गीतमें बदल रही है। गीतकी ध्वनि और भी मन्द-मधुर हो चली है। अब ध्वनि नहीं झंकार है और इसी धुँधली-सी चेतनामें मैं सोच रहा हूँ — विदेशी रंग और पाश्चात्यके स्पर्शसे दीप्त यह ऊँचा वृक्ष आज नहीं सोचता कि कल उसे अग्निमीत बनना है और आजकी दीनतामें दबा यह दूसरा वृक्ष भी अनुभव नहीं कर पाता कि कल उसे इसी विश्वको अपनी सुगन्धसे भर देना है।

गीत और भी मीठा हो चला है अनहद नाद-सा और ढोलककी ठम-ठोर बूँदोंकी टप-टप-सी प्यारी। उँगलियाँ ढोलकपर खेल रही हैं। अब आ गया सम पड़ी थाप और मेरी चेतना उसीमें रम गयी।

०

दो दिन दो गोष्ठियाँ

गतराम यौवनकी अमराइयोंमें जब मेरी चेतना पहली अँगड़ाइयाँ ले रही थी, घूम-घूमकर, झूम-झूमकर, कभी गाते कभी गुनगुनाते राष्ट्रीय पुनरुत्थानके महाकवि श्री मैथिलीशरण गुप्तकी युग-रचना 'भारत-भारती' मैंने पढ़ी थी।

उस पीढ़ीकी गीता ही थी 'भारत-भारती'। उससे प्रेरणा मिली थी, हजारोंने मुट्ठियाँ बाँधी थीं, चेतनाने पंख पसारे थे, पर यह सब मैंने इस एक ही पंक्तिमें समा गया था

'हम कौन थे ? क्या हो गये हैं ? और क्या होंगे अभी ?'

इस पंक्तिमें तीन रंग थे — अतीतके गौरवसे भरा, वर्तमानका गुलामीके दर्दसे भरा और भविष्यका स्वतन्त्रताकी आशासे भरा। इस तरह दो युगोंसे अधिक समय तक मैं इस पंक्तिके साथ रहा और तब आया १५ अगस्त १९४७ — भारतकी स्वतन्त्रताका दिन। मन उस दिन विचारोंका समुद्र हो गया, लहरपर लहर, लहरपर लहर — कुछ स्पष्ट, कुछ धुँधली। उनमें यह भी एक — क्या युग-युग-संगिनी इस पंक्तिका साथ आज छूट गया ? उत्तरमें हाँ, क्योंकि हमारा अतीत महान् था, वर्तमान हीन हो गया था, अब स्वतन्त्रताके साथ हमने खोयी महत्ता फिर पा ली, पर मन इस हाँमें हाँ मिलानेको तैयार नहीं, जैसे उसकी कोई बहुमूल्य वस्तु बलपूर्वक छिन रही हो।

जहाँ चाह वहीं राह, तो चाह है कि इस पंक्तिका साथ बना रहे और राह है उसकी यह व्याख्या — हम गुलाम थे, स्वतन्त्र हो गये हैं और अब हमें अपने महान् राष्ट्रके निर्माता — नागरिक होना है। सोच छिनते

छिपते जब गयी मेरी युग-युग-संगिनी और इस सूझीमें राष्ट्रके अतीत और भविष्य मिलकर एक गहरे चिन्तनमें समा गये ।

इस चिन्तनको पूर्णता मिली उस दिन लाला जगतप्रसादकी बातचीत-में । वे अपने कोल्ड स्टोरेजकी प्रक्रिया मुझे बता रहे थे कि कैसे फसलपर उत्तम माल रख दिये जाते हैं, उपकरणके द्वारा कैसे उन्हें बाहरी प्रभावोंसे निरापद (सुरक्षित) किया जाता है और मौसम कैसे उन्हें बाजारमें भेजा और बेचा जाता है । जगतप्रसादजी किसी भी स्थितिमें हों उनकी बातोंका रस और प्रवाह कभी बाधित नहीं होता । इस प्रवाहमें मेरी चेतना जिस किनारे लगी वह था यह कि राष्ट्रकी संस्कृति जब समाजके छोटे-छोटे राज्योंमें बँटने और बाहरी आक्रमणोंका तांता लगनेके कारण सुरक्षित न रही, उसके नष्ट होनेका खतरा पैदा हो गया तो सन्तोंने उसे तीर्थोंमें, सामाजिक समारोहोंमें और प्रथाओंमें बाँधकर और परिवारको व्यक्तिगत जीवनकी और जातिको सामाजिक जीवनकी मुख्य इकाई बनाकर सुरक्षित कर दिया, निश्चय कर लिया कि यह अच्छा समय आने तक बची रहे । भारतकी स्वतन्त्रताका उदय वही चिर-प्रतीक्षित अच्छा समय है — अब हमारी संस्कृतिको कोई खतरा नहीं उसके उगने-पनपने और फैलनेका यह समय है ।

अपने इस चिन्तनको मैंने एक लघु कथामें इस प्रकार सँजोकर रख दिया

नन्दन अपने गाँवका एकमात्र धनी था । सारे गाँवमें उसकी ऊँची हवेली दूरसे दिखाई देती थी । आस-पास चारों ओर उसका नाम फैला हुआ था ।

एक दिन खबर उड़ी कि आज सन्ध्याके समय गाँवमें डाका पड़ेगा और नम्बर नन्दका पड़ी । गर्वोन्मत्त डाकू सरदारने खुद ही यह खबर भेजी थी । गाँवमें और तो सब गरीब थे, डाकू भला उनका क्या लेते — क्या सिवा

रहे। उनके लिए तो गरीबी आज रत्नाकर थी। वे पूरी तरह विश्वस्त थे कि डाकेका मोटिम मन्ननके साथ ही है।

मन्नन भी यह जानता था। वह उस दिन दिन-भर अपनी हवेलीके किवाड़ बन्द किये भीतर घूमा रहा। कैसे वह डाकुओंसे अपने माल माल और प्राणकी रक्षा करे, यही उसकी चिन्ता थी।

सोच-विचारकर उसने अपना जेवर और धन अपनी हवेलीके पीछेवाले उपवनमें जगह-जगह बिखेर दिया। मोतियोंका हार नवलखा बिलमें रखा तो सोनेकी बोरी कुएँमें डाल दी। गिन्नियाँ घासके गट्ठरमें दबा दीं तो रुपयोंकी थैलियाँ बूढ़े बड़की खोखरमें भर दीं। यही उसने दूसरे कीमती सामानका किया।

उसकी हवेलीके पिछले हिस्सेमें एक बड़ा-सा गड्ढा था। उसमें वह स्वयं बैठा और अपने ऊपर उसने एक टूटा-सा टोकरा औंधा लिया। सन्ध्या होते ही हवेलीका द्वार उसने खुला छोड़ दिया और एक भी कमरा ऐसा नहीं छोड़ा जिसका द्वार बन्द हो या जिसमें कुछ भी व्यवस्थित हो। उसे उस गड्ढेमें बैठे टोकरीकी झिरझिरियोंसे सारी हवेली दिखाई दे रही थी।

दलबल-सहित रातमें डाकू आये तो वे सीधे मन्ननकी हवेलीपर पहुँचे। उन्हें विश्वास था कि वहाँ एक पूरे युद्धकी तैयारी होगी पर यहाँ तो द्वार खुले हुए थे। चौंकते-सँभलते वे भीतर घुसे पर हवेली तो बिखरी सी पड़ी थी।

'भाग गया शैतान और सारी दौलत भी साथ ही ले गया।' डाकुओंके सरदारने कहा और वे सब हाथ मलते लौट गये। मन्ननका दिल पहले तो धड़कता रहा पर अब वह मुसकरा रहा था।

दूसरे दिन गाँवके बड़े-बूढ़ोंने मन्ननके धैर्य और बुद्धिमत्ताकी प्रशंसा की पर कई दिन बाद भी उन्होंने मन्ननको उसी गड्ढेमें जाते देखा तो उन्हें आश्चर्य हुआ।

उन्होंने उसे समझाया कि अब कोई खतरा नहीं है। अपना भारको फिरसे व्यवस्थित करो अपनी सम्पदाको सुन्दर अलमारियोंमें सजाओ और स्वयं भी अपने सुखद पर्यंकपर सोना आरम्भ करो।

नन्दन सबकी सुनता है सिर हिलाता है पर मानता नहीं। कहता है जिस पद्धतिने मेरे प्राण बचाये धन-सम्पदाकी रक्षा की उसका त्याग मला मैं कैसे कर सकता हूँ ?

सब उसे समझाते हैं कि वह संकट-कालकी नीति थी। उस समय उसका व्यवहार करनेके लिए हम तुम्हारी प्रशंसा करते हैं पर आज तो उसका पालन एक विडम्बना है। कल जो सुखद था आज वह दुखद है। जब वह परिस्थिति ही नहीं तो वह नीति-पद्धति कैसे ठीक रहेगी ? उसे छोड़ो और अपना रूप ग्रहण करो।

नन्दन बहसें करता है और एकसे एक बढ़कर तर्क खड़ा करके उस पद्धतिका समर्थन करता है। सब देखते हैं कि उसकी सुन्दर हवेली सूनी और उजड़ी पड़ी है और उसकी धन-सम्पदा भी पोखरों-गड्ढोंमें बिखरी है। बातचीतसे अनुमान होता है कि अब वह यह भी भूलने लगा है कि कौन चीज किस पोखर या गड्ढेमें है, पर वह सन्तुष्ट है और स्वयं उस टोकरसे ढँके गड्ढेको ही अपना शयनकक्ष बनाये हुए है।

भावुक सुनकर वह उन पोखरों-गड्ढोंको पुकारता है रीति-प्रीति और उस बड़े गड्ढेको कहता है धर्मकूप।

सब देखते हैं कि उसकी सुन्दर हवेली सूनी-उजड़ी पड़ी है, उसकी धन-सम्पदा उन गड्ढों-खड्डोंमें बिखरी है और वह स्वयं भी उस टोकरेसे ढँके गड्ढेको ही अपना शयनकक्ष बनाये हुए है।

अँगरेजोंके जानेसे पहले दो शताब्दीके शासनमें भारतको सांस्कृतिक और बौद्धिक दृष्टिसे नष्ट-भ्रष्ट करनेके योजनापूर्ण प्रयत्न किये थे। उन्हें जो सफलता मिली उसका साक्षात्कार मुझे पहली बार हुआ।

धमकको मीने रसमें पागकर हरेकके कान तक पहुँचा दे।

यों ऐहिक अमरताके वैज्ञानिक साधनोंसे समन्वित वातावरण कि माइक-के सामने भी प्रस्ताव — टाइम्स ऑफ इण्डियाके जनरल मैनेजर — उत्साहको भाषामें आपके स्वागतार्थम। भरा-उभरा व्यक्तित्व महाराष्ट्रीय उभरती-सी आवाज और सधे-जुड़े शब्द कि बोलेंमे स्वागत भी और विचार विषयका परिचय भी।

आकृतिमें उम्रकी तरणाई तो प्रकृतिमें अनुभवकी प्रौढ़ता छातीके कुरते-पाजामेपर जम्हाइमा जवाहरकट कि बीचको तरफ बस एक बटन और महर कन्धेपर दावदार हाथसे की गयी इस्तरीके बल ऊपरको उभरती-सुध्दी कि जैसे यह सच्ची न हो नये फ़ैशनका कॉलर ही हो — सब कुछ एकदम दुरुस्त ये आये माइकपर भी गम्भीर मराठी।

टाइम्स ऑफ इण्डिया-प्रकाशन सम्बन्धि योजना बनायी है कि हिन्दी की पुस्तकोंका (आगे चलकर संविधान-स्वीकृत सभी भाषाओंका) अंग्रेजी में अनुवाद कर उन्हें विदेशी पाठकोंके सामने रखा जाये — जिसमे फैलाया जाये। इस योजनाको हाथम लेते ही कुछ प्रश्न सामने उठकर उभर आये हैं। उनका समाधान खोजना ही गोष्ठीका उद्देश्य है।

मुख्य प्रश्न है अनुवादके लिए पुस्तकोंके चुनावका। भारतीय साहित्य कारोंके लेखनकी प्रकृति और विदेशी पाठकोंकी अभिरुचिमे साम्य-वैषम्यका अनुपात देखकर क्या यह उचित है कि हम भारतीय जीवन-दृष्टिको प्रधानता दें? यदि हाँ तो वह जीवन-दृष्टि क्या है? या फिर पुस्तकोंकी कलात्मक भव्यताको ही प्रधानता दें जिससे यह सिद्ध हो सके कि विश्व के सामयिक साहित्यमे भारतीय लेखकोंका भी एक अपना स्थान है? इन दोनोंका ले तो समुचित अनुपात क्या हो?

और यो गोष्ठी आरम्भ हो गयी। सबसे महाराष्ट्रीय पर सबसे गुजरातीके साहित्यकार राष्ट्रसाधक काका कालेलकर माइकपर। राष्ट्रीय वेष राष्ट्रीय भाषा और राष्ट्रीय दृष्टि — भाषण सरस भी सबक भी

शुभाशुभ भी देखकर मन प्रसन्न हुआ, सुनकर सन्तुष्ट और तब भाषण ही भाषण।

भाषण-कर्ताओंमें ज्ञानी भी अनुभवी भी — ज्ञानी उलझे हुए, अनुभवी सुलझे हुए, ज्ञानी लच्छेदार, अनुभवी सादे। भाषाकी दृष्टिसे अँगरेजीकी भरमार कहूँ बात कि भारतका किनारा कहीं हाथ ही न आये जैसे अँगरेज अपना राज्य अपने मानस-पुत्रोंको सौंपकर गये हों भारतकी जनताको नहीं।

कोई तीन घण्टे यह विचार-चर्चा चली। मेरा चिन्तन यह था — अनुवादके लिए पुस्तकके चुनावकी कसौटी यह हो कि उससे भारतके सम्बन्धमें विदेशी पाठककी सम्मति ऊँची बने और हर पुस्तकमें ऐसी भूमिका रहे जो भारतकी महत्तासे पाठकको आरम्भमें ही इस तरह परिचित करा दे कि वह पृष्ठभूमिको समझता रहे। उदाहरणके लिए प्रेमचन्दके गोदानका अनुवाद हो तो भूमिकामें जमींदारोंके समयमें भारतीय देहातोंकी स्थितिका परिचय हो।

भोजनके बाद कार्यकी दूसरी बैठक: सभापतिके आसनपर श्रीराघवन तमिल तथा संस्कृत भाषाके समर्थ विद्वान् और दक्षिण भारतके यशस्वी साधक शान्त-सौम्य विशिष्ट व्यक्तित्व।

विचारणीय विषय अनुवाद-प्रक्रिया कि

१ किस प्रकारके ग्रन्थोंमें मुक्त अनुवादकी गुंजाइश है?

२ अनुवादमें अँगरेजी मुहावरोंकी चुस्ती लानेके लिए क्या किया जाये?

३ जिन शब्दोंका प्रचलित अँगरेजी रूप नहीं मिलता उनके सम्बन्धमें क्या नीति अपनायी जाये?

४ क्या भारतीय मुहावरोंका ज्यों-का-त्यों उतारें?

५ जिसे भारतीय अँगरेजी कहा जाता है उसके उपयोगके सम्बन्धमें

में हमारा दृष्टिकोण क्या हो ?

६ क्या छन्दबद्ध कविताओंका अनुवाद अँगरेजी छन्दबद्ध तुकान्तमें होना चाहिए या अँगरेजी मुक्त छन्दमें ?

मापयोकी झड़ियाँ और सुमावोंकी लड़ियाँ आरम्भ पर बाप रे, अँगरेजी-ही-अँगरेजी यहाँतक कि अमरीकोंकी तरह अँगरेजी बोलनेवाले अध्यक्षको कहना पड़ा कि मैं अच्छी तरह हिन्दी समझता हूँ आप लोग हिन्दीमें बोलें ! -- पर कोई असर नहीं अँगरेजी-ही-अँगरेजी।

और कह क्या रहे थे वे काले अँगरेज ? अपनी-अपनी राग वे रहे थे हिन्दीसे अँगरेजीमें अनुवाद करनेकी दिक्कतोंपर पर एक बात सब समान रूपसे कह रहे थे कि अनुवाद करनेके लिए या किये हुए अनुवादोंका सम्पादन-संशोधन करनेके लिए अँगरेज विद्वानोंका सहयोग जरूरी है अनिवार्य है इसके बिना प्रामाणिक अनुवाद हो ही नहीं सकता।

मुझे स्वर्गीय व्यायामाचार्य प्रोफ़ेसर राममूर्ति याद आ गये। उन्होंने अपनी यूरोप यात्राके बाद १९१९ ११ म लिखा था कि इंगलैण्ड जानेवाले भारतीयोंको सिरपर साफा बाँधना चाहिए, क्योंकि हैट लगानेवाले भारतीयोंको आम लोग भारतीय ईसाई मानते है और विदेशी पादरी भारतमें चाहे जो कहें, इंगलैण्डमें भारतीय ईसाइयोंको लोग नफ़रतकी निगाहसे देखते है।

यही हाल अँगरेजीके इन भारतीय भक्तोंका है। अँगरेजी कविताके कारण सरोजिनी नायडू भारत-कोकिला हो गयी पर इंगलैण्डमें छपे किसी भी महत्त्वपूर्ण कविता-संकलनमें उन्हें किसी अँगरेजने स्थान नहीं दिया।

मनमें विचार आया कि डेढ़ सौ सदी तक अंग्रेजोंके चोरसे गला घोंटकर अँगरेज तीन फीसदी भारतीयोंको ही जिस भाषाका साधारण ज्ञान करा सका और उसके विद्वानोंको इस लायक भी नहीं बना सका कि वे उत्तम अनुवाद करके ही साहित्यके तीसमारखाँओंमें अपना नाम लिखा लें उस भाषाकी हिस्टीरिया किस कोनेसे सिर इस क़दर सवार है कि वे अपनोंमें

अपनी देश-भाषा जानते हुए भी उस बोझका पसन्द न करें, उन्हें देशके दुर्भाग्य कालकी अभागी पीढ़ीके अतिरिक्त क्या कहा जाय और जब देशका नैतिक और राजनैतिक नतृत्व भी उसी पीढ़ीके हाथमें हो तो क्या सोचा जाये ?

यह सच है कि अनुवादका काम सरल नहीं है। इस सम्बन्धमें बहुत कुछ कहा गया पर सर्वोत्तम वह था जो स्वयं डॉ॰ राघवनने कहा अनुवाद और नारीमें एक बड़ी समानता है कि अनुवाद यदि रोचक होते हैं, तो शुद्ध नहीं होते और शुद्ध होते हैं तो रोचक नहीं होते।

सुनकर मुझे भारत-सरकारके पूर्व सूचना-मन्त्री डॉ॰ केसकर याद आ गये। उन्होंने रशियोंके एक साहित्य-समारोहका उद्घाटन करते हुए कहा था 'अनुवादके द्वारा हम पाठकको कृतिका मूल सौन्दर्य नहीं दे सकते यह सच है, पर उसका प्रतिच्छायित सौन्दर्य (रिफ्लैक्टेड ब्यूटी) दे सकते हैं यह भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं।

फिर सबसे बड़ी बात यह है कि अभीतक संसारमें यही हुआ कि दूसरी भाषाके रत्नोंका विद्वानोंने अपनी भाषामें अनुवाद किया है। इस प्रयत्नकी महत्ता और नवीनता ही यह है कि यहाँ विद्वान् अपनी भाषाके रत्नोंका दूसरोंकी भाषामें अनुवाद करनेके लिए प्रस्तुत-प्रवृत्त हैं।

क्या यह हीनता है ? क्या यह चोंचला है ? नहीं, यह परसना है प्रतिदान है, कहूँ राष्ट्रीय सत्कर्म है। इससे भी बढ़ें तो कहूँ कि यह अतीतमें महान् विवेकानन्दके द्वारा आरम्भ किये संस्कृति-यज्ञका तप-साध्य उद्यापन है।

"दीवानजी, आज तुम मुझे सड़कके बीच बैठकर सब्जी बेचनेपर गालियाँ दे रहे हो, दे लो, कोई बात नहीं, पर गान्धी महाराजका नाम तो सुना होगा तुमने ! वे हमें आजादी दिलानेवाले हैं। उस दिन देखना मैं सड़कके बीचमें यहीं झोंपड़ी बनाकर बैठूँगा।

गुलाम भारतके किसी कूँजड़े मालिने अंग्रेजी राजके किसी पुलिस

दीवानको यह जवाब दिया था। स्पष्ट है कि जनता विविध बन्धनोंमें जकड़ी थी और उसकी कल्पनामें सब अभावों-आकांक्षाओंकी पूर्तिका समावेश आजादीमें था। यही कारण है कि गुलामीसे छूटते ही जन-मन स्वाधीनता की ओर नहीं, स्वच्छन्दताकी ओर बढ़ा और बन्धनोंकी कसमसाहट इतनी व्यग्र थी कि यह स्वतन्त्रता शीघ्र ही स्वच्छन्दताके तट जा लगी। तब सामने आये भाषाके मोर्चे, जिनपर असमी, बंगाली, मराठे, गुजराती, सिख, हिन्दू इस तरह लड़ते दिखाई दिये, जैसे वे जन्म-जन्मके बैरी हों और उनमें मतभेद नहीं, जन्मजात शत्रुता हो। बम्बई और पंजाबमें इस उग्रताका जो प्रदर्शन हुआ, उसमें देशकी एकता ही खतरेमें पड़ गयी, क्योंकि अब देशके लिए भाषा नहीं, भाषाके लिए देशकी बलि देनेका उपक्रम हो रहा था।

कितनी विचित्र बात है कि भाषा, जो मनुष्यको मनुष्यके पास लाती है, मनुष्य-मनुष्यकी एकताका वाहन बनती है, मनुष्यको मनुष्यसे खूंख्वार भेड़ियोंकी तरह लड़ा रही थी, क्योंकि वह सहयोगकी राह भूल संघर्षके पथ जा चढ़ी थी। अनुभवी देश-नायकोंके लिए यह स्थिति असह्य थी और राष्ट्रकी कठिनता विचित्र थी कि क्या राष्ट्रकी तरह भाषाओंके बीच स्वस्थ सम्पर्कका कोई मंच नहीं हो सकता, जहाँ सब समान अधिकार और समान दायित्वके साथ बैठें, मिलें और देखें कि वास्तविक परिस्थितियाँ भावात्मक हैं, अभावात्मक नहीं, संयोगात्मक हैं, वियोगात्मक नहीं, सम्पर्कात्मक हैं, असम्पर्कात्मक नहीं, अनेकमें संघटनात्मक हैं, विघटनात्मक नहीं।

७ अप्रैल १९६२ को प्रदेश प्रदेशसे पधारे विविध भाषाओंके समर्थ साहित्यकारोंका। इसीलिए जब भारतीय ज्ञानपीठकी अध्यक्षा श्रीमती रमा जैनने अखिल भारतीय साहित्य-पुरस्कारकी घोषणा की, तो लगा कि यह उस स्वस्थ सम्पर्क मंचकी सम्भावनाको ही पोसना है।

इसकी पारस्परिक धारा ५ लगभग पचीस आभ्यन्तर बाधाएँ

कारण मिलता है और कई अन्य कारणोंके योगसे ही कोई कृति स्वीकृत बन पाती है, तो भी सामाजिक मान्यता तथा उसकी प्रतिभाके उसके प्रति समूचे राष्ट्रका कभी मान लेखकको आश्वस्त करते हैं कि उसकी कृतियोंको व्यापक रूपसे पढ़ा जाता और समादृत किया जाता है। राष्ट्रीय पुरस्कार तथा भेंट सब इसी मान्यताके प्रतीक हैं।

भारतमें जहाँ प्रत्येक भाषाकी अलग-अलग सबश्रेष्ठ कृतिके लिए विपुल ही प्रादेशिक एवं राष्ट्रीय पुरस्कार हैं वहाँ कोई ऐसा पुरस्कार नहीं है, जो इन सब भाषाओंकी कृतियोंमें-से चुनी हुई सब-श्रेष्ठ कृतिके लिए हो। ऐसे पुरस्कारकी संस्थापना राष्ट्रीय आवश्यकता है और ऐसा पुरस्कार मूल्य एवं मात्रामें इतना प्रचुर भी होना चाहिए कि राष्ट्रीय गौरव तथा अन्तर्राष्ट्रीय मानदण्डोंके अनुरूप हो।

भारतीय ज्ञानपीठ नामक शोध एवं सांस्कृतिक प्रतिष्ठानकी स्थापना संस्कृत प्राकृत पाली तमिल आदि भाषाओंके अनुपलब्ध एवं अप्रकाशित प्राचीन भारतीय वाङ्मयके प्रकाशन तथा आधुनिक भारतीय भाषाओंमें सृजनात्मक साहित्य रचनाको प्रोत्साहन देनेके उद्देश्यसे श्री शान्तिप्रसाद जैन-द्वारा १९४४ में हुई थी। उसकी योजना है कि समस्त भारतीय भाषाओंमें सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वोपरि साहित्यिक सृजनात्मक कृतिपर एक लाख रुपया प्रतिवर्ष पुरस्कार-दानके निमित्त अपेक्षित निधि प्रस्तुत कर योजनाका संचालन करे।

प्रयास तो काम अत्यन्त कठिन है पर कठिनाई अलंघ्य नहीं है। राष्ट्रीय महत्त्वका यह काम सम्पन्न करना ही है फिर उसमें जितना भी श्रम पड़े और जो भी व्यय हो।

और यों विचार-गोष्ठी आरम्भ हो गयी। गोष्ठीके संयोजक हैं श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन : सधे-संयत व्यक्ति और स्वर ऐसा कि कब नहीं दूरस

छनकर आ रहा है — एकदम सम्पृक्त और स्निग्ध। कहीं एक आत्ममुग्ध कमनीय व्यक्तित्व। कहीं मैं कोई पचीस वर्षोंसे देख रहा हूँ निकटसे दूर से। एक गहरी रचनात्मक प्रतिभाके स्वामी हैं ये और यद्यपि उन्होंने कम लिखा है, पर यह कम मात्रामें भले ही कम हो मात्रामें कम नहीं है — चिरस्थायी है। यथा ज्योत्स्नाके समयपर असीम आकाशके वितानमें और एक डाकू या सत तीन दृष्टियाँ जैसे उनके रिपोर्ताज अपनी जीवन-दृष्टि और शिल्प-शैलीके कारण मुक्ती सर्वमान्य कृतियोंमें निश्चय ही स्थान पायेंगे।

उनके निमन्त्रणपर सत-साधना-अनुभव-वृद्ध काका कालेलकरने अपनी प्रशस्त शैलीमें पुरस्कार-योजनाका स्वागत और पुरस्कर्ताओंका अभिनन्दन किया। यह स्वागत और अभिनन्दन इतना भाव-भीना इतना हार्दिक कि लोगोंका वातावरण इतना मांगलिक हो उठा कि जैसे किसी कुएँके पास माँ-बहनोंके रसभीने लोक-गीतोंकी गुंजारमें भटका वृक्ष रोपा जा रहा हो।

केन्द्रीय मन्त्री मुख्य मन्त्री और राज्यपालके पदोंपर सफलतापूर्वक काम करनेवाले श्री हरेकृष्ण मेहताब — साहित्यिक भी राजनीतिज्ञ भी नेता भी कार्यकर्ता भी। कहीं शासनधारी होकर भी धरतीके आदमी। तभी तो उन्होंने एक वाक्यमें यह सब कुछ कह दिया जो आवश्यक था — 'यह पुरस्कार राष्ट्रीय एकताका अनुष्ठान है और मेरा विश्वास है कि यह योजना धीरे-धीरे आत्मविकास करेगी।

संसारका कोई भी संविधान अपूर्ण है अयोग्य है यदि वह सर्वथा सिद्ध परम्पराओंका सहारा न ले पर क्या कभी और कहीं ये परम्पराएँ संविधानके साथ जन्मी हैं? ना ये धीरे-धीरे नयी परिस्थितियों और आवश्यकताओंमें जन्मी हैं। इसीका अर्थ है 'योजनाका आत्म-विकास'। इसे सुननेके बाद ही अनेक आशंकाएँ भाषणोंमें प्रकट हुईं अनेक सुझाव आये पर इसका एक शुभ पक्ष भी है कि एक साल पहले पुरस्कारके महान् अनुष्ठानकी घोषणासे राष्ट्रके साहित्य-साधकोंका चिन्तन जागृत हो उठा है।

इनका मत है कि घोषणाका उसके मग्न होते ही राष्ट्रव्यापी प्रभाव पड़ा है। मेरा मन कल्पनाके पथमेंसे उस ऐतिहासिक समारोहको देखने लगा जो १९६५ में हिन्दी साधकको प्रथम पुरस्कार प्रदानके लिए होगा। पुरस्कार प्राप्तकर्ताका साफ चेहरा तो मुझे दिखाई नहीं दिया क्योंकि वह पुरस्कार प्रदाता राष्ट्रपतिके सामने झुका हुआ था पर इतना मैं साफ देख पाया कि वह साधक हिन्दी भाषी नहीं है। मुझे तो अपना यह कल्पना-दर्शन शुभ-शकुन-सा लगा।

चर्चा रही कि ज्ञानपीठ-पुरस्कार एक भाषाका न होकर दस-दस हजारके दस स्तोम दस लेखकोंको प्रतिवर्ष दिया जाये। बढ़कर यह चर्चा पचीस-पचीस हजारके चार भागों तक पहुँची पर संस्थापक विधाता भारतके इस पुरस्कारको खण्डित करनेके लिए तैयार न थे। मनमें प्रश्न उठा — इस विचारका मर्म क्या है? उत्तर मिला — दैन्य! लम्बी गुलामीने हमारे अन्तरको दैन्यसे भर दिया है और हम अपनी पात्रताके प्रति अविश्वासी हो गये हैं, अरे, लेखकको एक लाख रुपये!!

यद्यपि बीचमें भी साहू शान्तिप्रसाद जैन गोष्ठीमें आये तो उनसे मंच की कुरसीपर बैठनेको कहा गया पर व वहाँ नहीं बैठे और श्रोताओंके बीच ही एक कुरसीपर बैठ गये। ज्ञानपीठ-पुरस्कारकी आत्मा है व तो प्राण चेतना है रमा रानीजी। इस स्थितिमें उनका वहाँ बैठना सबको भाता पर मधुरीम असाधारणताके आकाशसे उतरकर उधर रहकर पीछे-आपनेकी एक ऐसी सुकुमार वृत्ति है कि उससे उनकी सरल सहयोगी मानवीयता सदा प्रदीप्त रहती है।

साधकोंकी इस गोष्ठीमें मक्खियाँ भी थीं। उन्हें इस भाषणमें 'पुरस्कार समर्पकोंके दो फेवरेट लेखकोंको सम्मानित करनेके बाद योजनाके ठप्प होने का षड्यन्त्र' दिखाई दिया पूँजीवादके प्रचारकी गन्ध आयी श्रेयकारी समता दीखी पर सोचता हूँ मक्खियोंकी भिनभिनाहटका रिकार्ड ही हम क्या करें?

पुरस्कारका संविधान गोयुक्तसाहब और दूसरे विश्व-पुरस्कारोंके संविधानोंका अध्ययन कर बनाया जा रहा है और वह एक विशाल ग्रन्थका रूप लेगा पर मान्या रमा रानीजीने जो रूप-रेखा दी और यथाविधि बीच-बीचमें श्री लक्ष्मीचन्द्र जैनने जो स्पष्टीकरण किये उनसे स्पष्ट है कि पुरस्कारका संविधान शुद्ध प्रजातन्त्री और प्रतिनिध्यात्मक होगा और संस्थापकोंका हाथ उसमें स्पर्शमात्र ही रहेगा। संस्थापकोंकी यह वृत्ति भी मुझे स्पृहणीय लगी कि न पुरस्कारपर अपना या अपने पूर्वजोंका नाम लगानेके लोभको संवरण कर सके और उसकी घोषणा भी उन्होंने अपनी ओरसे न कर एक सार्वजनिक संस्था भारतीय ज्ञानपीठकी ओरसे की। निश्चय ही इसके लिए भविष्य उनका अभिनन्दन करेगा।

मैंने कहा कि पुरस्कार-घोषणासे साहित्यकारोंमें गहरा चिन्तन जागृत हुआ पर यह चिन्तन कितना बहुमुखी है इसका अनुभव मुझे तब हुआ जब श्री जैनेन्द्रकुमारने कहा 'ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि पुरस्कारका धन लेखक तक पहुँच सके। ऐसी व्यवस्था न हुई, तो सरकारका इनकम-टैक्स-विभाग आधा धन ले लेगा।' सुनकर सोचा ब्राह्मणवंशी जैनेन्द्रका अन्तर्यामी वैश्य कितना जागरूक है!

यह आये माइकपर लक्ष्मीचन्द्र जैन कि धन्यवाद दे विसर्जन करें कि अपनी जगह खड़े होकर कविवर श्री सियारामशरण गुप्तने कहा 'अस्मिन् हर्म्ये श्रीश्च सरस्वती च।' (इसमें दोनों हैं लक्ष्मी भी सरस्वती भी)। लक्ष्मीचन्द्रजीने वहीं माइकपर आनेसे कहा तो बोले 'बस मुझे इतना ही कहना है।' मैंने सोचा काकाजीने इस योजनाका मांगलिक समारम्भ किया था और सियारामशरणजीने कह कर दिया मांगलिक समारोप तो मधुरम् मंगलम् संपन्नम् इस ज्ञानपीठ-पुरस्कारकी सफलता निश्चित है।

और बस मेरा मन फिर गहरे उतर गया और उसमें एक प्रश्न उभरा यह सब हुआ क्या?

यह सब नहीं हुआ जो आरम्भमें कह चुका हूँ सर्वनाशका नगारा

उत्पन्न होनेपर सबोंके द्वारा सुरक्षित विजय की गयी हमारी संस्कृतिमें जीवित रहने और फैलनेकी फौलादी इच्छा एवं शक्तिका साक्षात्कार। साधनाके लिए इतना और पहली गोष्ठी है संस्कृति-संस्कारोंका बाह्य फैलाव कि हम दूसरोंसे पीछे ही न रहें उनके पगमें भी। कहें, यह है हमारी पुष्पा बलि प्राप्त ज्ञानको हस्तगतताम प्रतिपादन और दूसरी गोष्ठी है उसी संस्कृति संस्कारोंका अन्तःफैलाव कि वहाँ एक-दूसरीमें मिलकर या घुल हों कि पुष्पोंसे रस लेकर पुष्पोंकी सजनामें सहायक होती रहें।

वेदने कहा है, 'शतहस्त समाहर सहस्रहस्त संकिर।' अब है, सौ हाथोंसे धनिसम्म संचय कर हजार हाथोंसे उसे बिखेर तो दूसरी गोष्ठीका विषय है धनिका संचय और पहली गोष्ठीका विषय उसका वितरण। एक है नींव तो दूसरी है कलश दोनों मिलकर संस्कृतिके भवनको परिपूर्णता देते हैं।

गोष्ठियोंकी पूर्णतापर मनमें आया — श्रीमती रमा रानी जैनके पारिवारिक व्यक्तित्वको दिगम्बर जैन महिला-परिषद्की नेतृत्वने सामाजिक बनाया तो भारतीय ज्ञानपीठके संचालनने सांस्कृतिक रूप दिया पर अनुदान — योजना और पुरस्कार-घोषणाने निश्चय ही उन्हें स्मरणके योग्य एक राष्ट्रीय व्यक्तित्व बना दिया है।

o

अपने मंगी भाइयोंके साथ

होली है हमारे राष्ट्रकी मस्तीका त्यौहार !

मस्ती पाबन्दियोंको नहीं मानती और पिछली शताब्दियोंमें हमारे राष्ट्रको भारना घोर पाबन्दियोंमें घिरे रही है। ये पाबन्दियाँ हैं धर्मकी समाजकी आचार-विचारकी विधि-निषेधकी छोटे-बड़ेकी सूक्ष्म अस्पृश्यकी।

होली इन सब बड़े और कमजोर बन्धनोंको भूलकर स्वतन्त्रता ही नहीं स्वच्छन्दता अनुभव करनेका त्यौहार है – भले ही केवल एक दिनके लिए।

केवल एक दिनके लिए ? हाँ केवल एक दिनके लिए, पर इस एक दिनका बहुत महत्त्व है। कितना ? बहुत-बहुत पर यह बहुत ऊपरी नहीं सूक्ष्म है और जरा गहरेमें उतरकर इस सूक्ष्मको अपनेमें बसाना होगा।

मेरे नगरमें एक छोटी-सी सड़क है, जो कचहरीकी सड़कको रेलवे कालोनीकी सड़कसे जोड़ती है। यह सड़क रेलवे विभागने अपने खर्चेसे बनवायी है पर है यह म्युनिसिपल बोर्डकी सीमामें और नगरके सभी लोग इसका उपयोग करते रहते हैं।

रेलवे विभाग वर्षमें एक दिन इस सड़कको आम जनताके लिए बन्द कर देता है और इस तरह सड़कपर उसके अधिकारकी घोषणा हो जाती है।

यही बात होलीकी है। यह वर्षमें एक दिन हमारे समाजके बन्धनोंको व्यर्थ घोषित कर सबकी समानताका सन्देश ही नहीं एक सुन्दर प्रवचन हमें दे जाती है। लोक-भाषामें होली शूद्रोंका पर्व कहलाता है। प्रश्न

अब क्या है ? यही कि आज होलीके दिन शूद्र भी समाजके दबे हुए अब भी अपनेको उभरा और दूसरों-जैसा ही स्वतन्त्र अनुभव करते हैं।

यह क्या बीती शताब्दियोंकी परिस्थितियोंमें कोई साधारण बात रही कि समाजके सब वर्गोंकी समानताका बीज हम पर्वने नष्ट नहीं होने दिया उसे बचाये रखा।

अब हमारे स्वतन्त्र राष्ट्रके महान् विधानने अधिकारपूर्वक वैधानिक रूपमें समाजके सब लोगोंको समानता घोषित की है। यह वैधानिक समानता जीवनमें घुल-मिलकर सामाजिक समानताका रूप ले ले तो हमारे पुण्यपर्व होलीका भी नया रूपान्तर, नया संस्करण प्रस्फुटित होगा यह स्वाभाविक है।

होलीका दिन और मैं अपनी कुटियामें रोग-शय्यापर धूप धूल और गुलाल तीनोंसे अपनेको बचाये पर त्यौहार तो मनहूसोंको भी फुरेरी देते हैं। मुझे भी फुरेरी आ रही है कि किसीके साथ होली खेलूँ।

तीसरा पहर जाते-न-जाते यह फुरेरी जरा निखर चली तो मैं उठा और पास ही अपने स्टेशनपर आया। थर्ड क्लासका मुसाफिरखाना जिसमें स्वराज्यके सन्देशवाहक-से बिजलीके पंखे लगे हैं और साफ-सुथरी बेंचें बिछी हैं। वहीं पास ही थर्ड क्लासके मुसाफिरोंकी टट्टियाँ हैं। मुझे वहीं जाना था मैं पहुँच गया। दो भंगी वहाँ बैठे थे। मुझे वे जानते हैं झट हो गये 'पण्डतजी राम राम।'

'राम राम चौधरी साहब!' मैंने कहा और साथ ही यह भी कि 'होलीकी बधाई भैया!'

दोनोंने समझा मैं शौचके लिए ही आया हूँ और उन्होंने एक साफ-सा टामलेट आगे बढ़ाया।

मैंने कहा मैं तो तुमसे होली मिलने आया हूँ भैया!" और आगे बढ़कर मैं दोनोंसे गले मिला। दोनोंके लिए यह नया अनुभव है, यह मुझे

उनके भीषक चेहरोंसे जान पड़ा।

ओह, बेचारोंको रात-दिनकी सेवाके बदले समाजने कभी इतनी ममता भी नहीं दी — यह मेरे मनमें आया, तो एक कील-सी कलेजेमें चुभ गयी। तभी मैंने सोचा — हम दुनिया-भरके ज्ञान-विज्ञान छोड़ते रहते हैं, पर अपने चारों ओर नहीं देख पाते।

दो ग्लास चाय बाहरसे लाकर मैंने उन्हें दी और वहीं बैठकर उनसे बातें करने लगा। वे धीरे-धीरे चाय पी रहे थे।

मैंने देखा — इन्हीं कुछ दिनोंमें बाकी टट्टियाँ फ्लशकी बन गयी हैं, जो शीघ्र ही काममें आने लगेंगी और तब ये बाकी भी फ्लशकी बन जायेंगी।

फ्लश-सिस्टमको मैं अपने देशके लिए वरदान मानता हूँ, क्योंकि हरिजनोंके नव-जीवन-निर्माणका यह पचास प्रतिशत समाधान है। जो हम क़ानूनसे न कर पाये, वह विज्ञान करेगा।

यह देखनेको कि फ्लशका इन लोगोंकी दृष्टिमें क्या रूप है, उनसे पूछा — 'फ्लश हो जानेसे तो बहुत आराम हो जायेगा भैया?'

'हाँ पण्डतजी, फिर यह नरक नहीं रहेगा।' बड़ेने कहा। इस उत्तरमें आजकी परिस्थितिसे ऊब बुझे पत्तेकी तरह साफ थी। तभी छोटेने कहा — 'अजी, एक टट्टीके बननेसे क्या हो, यह तो सारी दुनियामें नरक हो रहा है।'

इस उत्तरमें उस लड़केकी तेजी मुझे मिली। इस तेजीको पचाते हुए मैंने कहा — 'दस बरसमें सारे देशकी टट्टियाँ फ्लशकी हो जायेंगी।'

मैं अपने उत्तरकी प्रतिक्रिया उनके चेहरोंपर पढ़ रहा था! वहाँ कोई चमक मुझे दिखाई नहीं दी। मैंने सोचा — लम्बी बातें, थोड़े बड़े और पक्केसे पक्के क्यों न हों, पिसी हुई जनताको आश्वासन नहीं दे सकते।

इस सत्यको अपनेमें लेना मेरे लिए ज़हर पीना था, क्योंकि इसका अर्थ है — हम बातोंके द्वारा आम जनताकी आँखोंमें उसके भावी विशाल राष्ट्रके उज्ज्वल भविष्यका स्वप्न नहीं उतार सकते।

इस अर्थका फलितार्थ यह हुआ कि जन-साधारणके जिस अहर्निश स्वेच्छाश्रमके द्वारा राष्ट्रोंका नव-निर्माण सम्भव है और उसकी नींव जिस मानसिक उर्वरतापर रखी जा सकती है वह जनतामें बातोंसे उत्पन्न नहीं हो सकती उसे कुछ प्रत्यक्ष चाहिए, भले ही वह कुछ कमसे कम हो।

जो कुछ अभीतक हाथ आया वह यह था हमारे राष्ट्रकी आम *जनता आज जिस स्थितिमें है उसमें वह अपने शासकों और साधकोंसे* तुरन्त कुछ चाहती है और महान् राष्ट्रके निर्माणमें उससे हम जिस मनीषा और परिश्रमकी आशा करते हैं वह इस चाहकी पूर्तिपर ही निर्भर है।

मैं सोच रहा था वे चाय पी रहे थे। मुझे अपने बापूकी याद आ गयी। हमारे इतिहासमें इस देशकी आत्माको ठीक-ठीक पहचाननेवाला कोई दूसरा महापुरुष पैदा नहीं हुआ जो राष्ट्रके नव-निर्माणकी शृंखलामें इतनी गहराइयों तक उतरा हो।

इस देशमें सामाजिक क्रान्तिके नारे लगानेवाले भले-भले हैं पर अस्पृश्यता-निवारणको सामाजिक क्रान्तिका प्रतीक मानकर बापूने जितनी दूर तक देखा वह तो दूसरोंके लिए कल्पनातीत ही है।

आर्थिक सामाजिक क्रान्तिका अर्थ है बाहरी समानता और अस्पृश्यता निवारणका अर्थ है भीतरी यानी मानसिक समानता। पहली शस्त्रकी शक्तिसे हिंसाके बलसे सम्भव है दूसरी मनके संस्कारोंके परिवर्तनसे इसे या भी कह सकते हैं कि पहली है सामाजिक क्रान्ति और दूसरी है मानसिक क्रान्ति — पहलीका चरम विकास दूसरीमें है पत्तों और टहनियों-का नहीं मूलका ही यह परिवर्तन है।

तभी आ गया उनमें-से एकका पुत्र। होगा कोई सात आठ सालका। मैंने उसे भी चायके लिए एक कुरसी दी और तब उन दोनोंसे कहा "भैया तुम अपनी ज़िन्दगीमें जिस अपमान गरीबी और नरकको भोगते रहे हो इस बच्चेको वह सब नहीं भोगना पड़ेगा क्योंकि जबतक यह जवान होगा तबतक

दुनिया ही बदल जायेगी और समाजमें सबका दर्जा बराबर हो जायेगा ।

मैं बहुत महत्त्वासे दोनोंके चेहरे देख रहा था कि उनपर क्या-क्या झलक आती है। मुझे लगा कि खुशीकी एक लहर आकर उतर गयी ।

तभी छोटेने कहा 'अभी कहाँ बदले है दुनिया ! हमारी किस्मतमें नरक ढोना लिखा है तभी तो भंगीके घर पैदा हुए हैं। हमने ढोया हमारे बच्चे भी ढोयेंगे दुनिया कहीं नहीं बदलती ।"

किस्मत हमारी राष्ट्रका वह मानसिक चक्रव्यूह है जिसमें फँस-फँसकर परिवर्तनकी क्रान्तिकी भावना घुट-मरती है। यह ऐसा डी डी टी है जो असन्तोषके कीटाणुओंको जन्म ही नहीं लेने देता ।

मैं जब निराशासे कमजोर हो ही रहा था कि बड़ेने ठेठ सहारनपुरी उच्चारणमें कहा 'अरे मूरख बदलती क्या दुनिया तो बदलती। ऐसे विद्वान पण्डत तुम्हारेसे होली मिलन आये होर (और) म्हारे पास बैठके बातां पूछ रे, या मामूली बात है क्या कुछ ? यहाँ इतना हुआ तो इन-जैसोंके पुन-परतापसे होर भी हो जागा। कभी-न-कभी तो सबके दिन बहुरेंगे म्हारे क्या हमेशा ऐसो ही रहेंगे ।

बात पूरी हो गयी थी मैं उस बालकको पुचकारकर उठ खड़ा हुआ। चलते-चलते बड़ेने कहा 'राम-राम पण्डत जी कभी-कभार तम आ जाया तो हमें सुरग-सा दिख था ।

राम राम कर मैं चला तो बालक अपनी खुशीमें उछलता हुआ था। उसके लिए नये समाजकी रचनामें यह खुशी अधिक कीमती थी। यहीं बात कि समाजकी व्यवस्थामें बदलनेके लिए भावना यथार्थसे अधिक महत्त्वपूर्ण है।

चलन-चलन सब मिलाकर मैंने सोचा शासन-शक्ति देशके वस्तुगत भविष्य-निर्माणमें लगी रहे और सामाजिक-शक्तिका ऐसा-समाज बनानेमें लगे तो राष्ट्रके नव-निर्माणका कार्यक्रम सही रूपमें चल सकता है। मैं अपनी कुटियामें लौटकर आया तो थक गया था पर रोम रोममें होलीकी मस्ती थी — आजकी होली खूब रही ।

दो अधिवेशनोंमें सबश्री लक्ष्मीचन्द्र जैन अशोककुमार भट्टाचार्य अखिल रंजन भट्टाचार्य विमलेन्द्रनाथ बाचाल और शचीशचन्द्र घोषकी योजना थी। सबश्री सुनीतिकुमार चटर्जी बी एम बड़ुवा प्रिन्सिपल क पी मित्र-जैसे लोगोंकी उपस्थिति और सहभागने इस उत्सवको गम्भीरता दी थी और श्री पं जुगलकिशोरजी मुख्तार इस विशाल अनुष्ठानके आधार पत्थर अविच्छिन्न थे।

जैन ज्ञानपीठ और महावीर-सन्देशके गायकोंमें यहाँ सुशीला जैन थीं वहाँ सबश्री इकबाल अहमद कुमारी रहीम बीना बजेर और मीरा सीक भी थीं। बहुत-से सकीम उत्सवोंमें जुटनेके बाद मुझे तो इस उत्सवका वातावरण ऐसा लगा कि कारखानेसे निकलकर हम कहीं बंगलेपर आ बैठे हों।

प्रतिनिधियोंकी गोष्ठियोंमें

'मुझे अधिवेशनमें खुले दिल बातें करना सम्भव नहीं होता अतएव यहाँ हम एक सिंहावलोकन कर लें कि हमारे समाजमें कहाँ क्या हो रहा है और यहाँ हम विचार कर लें कि कहाँ क्या होना चाहिए, जिससे कि हमें नयी स्फूर्ति मिले और हम इस उत्सवके कामाकमका उपयोग भी इस विधान कर सकें इन शब्दोंमें श्री साहू शान्तिप्रसादने प्रतिनिधियोंकी गोष्ठीका आरम्भ किया। कई सज्जन बोले पर भाषणके बोधने कहें कहींसे कहीं पहुँचा दिया। गोष्ठियोंके सम्बन्धमें मेरा अनुभव है कि उनमें चुने हुए आदमियोंको ही बुलाया जाये और भाषण-ब्रह्मचर्यका पूरा ध्यान रखा जाये।

सबश्री राजेन्द्रकुमार जैन डा लालचन्द्र एडवोकेट और बैरिस्टर जमनाप्रसादने कामकी बातें कहीं। लालचन्दजी बीते-जमानेके प्लेटफार्म हैं और जमनाप्रसादजी—बौद्धिक मिशन दोनोंको देखकर हमेशा मेरे मनमें यही भाव आता है कि ये दोनों जैन समाजकी भुजाएँ हैं पर एक अपनी जगह

धन्धेमें व्यस्त है और दूसरा जमीनमें। भगवान्‌की जैन समाजपर बड़ी कृपा हो यदि कोई ऐसा केस हो जाये कि एकका दिवाला पक्का हो जाये और दूसरा अपनी नौकरीसे अलग कर दिया जाय। सम्भव है दोनों बन्धु मुझपर नाराज हों पर मैं तो इस उनके प्रति शुभकामना ही मानता हूँ।

सर सेठ हुकुमचन्दजीके पधारनेपर जब श्री जैनेन्द्रकुमारजीने उनके सामनेकी चौकीपर बैठे-बैठे अपना भाषण आरम्भ किया 'मैं सोच रहा था कि हम बैठे हैं पर हममें सर नहीं है। अब हममें सर है जिसके बिना काम नहीं होता।' तो सर साहबने बड़े स्नेहसे उनकी कमरपर हाथ फेरा पर बहुत-सी आँखोंने एक विचित्र भावमें एक-दूसरेकी तरफ देखा भी।

लम्बा कद छरहरा बदन गौर वर्ण शान्त मुख-मुद्रा और धीर गम्भीर भाषण। एक सज्जन पधारे और लोगोंके आग्रह करनेपर भी बादमें आनेके कारण पीछे ही बैठे रहे तो मनपर उनकी सज्जनताकी छाप पड़ी पर विज्ञान-परिषद्‌में जब यही सज्जन 'बात पर बात' हो गयी जिज्ञासा पर उनके अध्ययनकी गम्भीरता छा गयी। ये भारत सरकारके रिटायर्ड एकाउन्टेन्ट जनरल (नोटोंपर दस्तखत करनेवाले पहले भारतीय) श्री ब्रजप्रसाद जैन सी आई ई महाशय हैं। यह देखकर मुझपर तो यही प्रभाव पड़ा कि इनका व्यक्तित्व जैन-समाजकी एक शक्ति है और इनका पूरा उपयोग लिया जाना चाहिए।

मोरेना पण्डित मक्खनलालजीने दो परिस्तोरोंका प्रतिनिधित्व किया पर उनके शास्त्रीय भाषणकी ध्वनि थी कि इस वक्ता समाजकी जीवित प्रवृत्तियोंके साथ कोई सम्पर्क नहीं है।

गुप्त अधिवेशनमें

इसी दिन रातमें श्री वैश्यविद्यालय विज्ञान मन्दिरमें और ... का गुप्त अधिवेशन हुआ। डा. रामकुमार ... जैसे अमरेका

उद्घाटन-भाषणमें भारतीय संस्कृतिके निर्माणमें जैन-संस्कृतिके दानपर सुन्दर प्रकाश डाला। श्री साहू शान्तिप्रसादजीका स्वागत-भाषण भाषा और भाव दोनों दृष्टियोंसे संयत था, दृष्टिकोणमें व्यापकता थी और जैन समाजके उदाहरणसे पाकिस्तानपर उत्तम जो चोट की गयी थी, वह ऊपरसे सूक्ष्म होकर भी बेधक थी। राजराजा सर सेठ हुकुमचन्दजीने सभापतिका आसन ग्रहण किया। श्रीमती रमा रानीजीने जब सभापतिके मस्तकपर तिलक कर उन्हें नारियल भेंट किया, तो राजपूती इतिहास आँखोंमें सजीव हो उठा। नारीके इस छोटेसे लाल तिलकने जाने कितने वीरोंको कर्तव्यकी प्रेरणा दी है और कितनोंको गिरते-गिरते सँभाला है।

महाराष्ट्रीय ढंगकी किश्तीनुमा पगड़ी, लाल पगड़ी, गलेमें कीमती पन्नोंका दोहरा कण्ठा, चमचमाती वायलका अँगरखा, विशाल आकार और गम्भीर हास्यपूर्ण मुखमुद्रा, सचमुच सर साहब जैन समाजकी दर्शनीय विभूति हैं। पुरानी भाषा-शैलीमें हम आसानीसे उन्हें नरसिंह कह सकते हैं।

स्वागताध्यक्ष श्री साहूजीने उन्हें कुरसीपर बैठाया, भाषण खोलकर उनके हाथमें दिया, चश्मा लेकर ठीक किया और तत्काल विशाल पण्डालमें सर साहबकी गम्भीर वाणी गूँज उठी। भाषण विस्तृत था और सर साहब उसे शास्त्र-वाचनकी 'टोन' में पढ़ रहे थे। उस मस्ती भरे और अभिमानविहीन बोलों। साहूजीने कानमें कहा, लाइए मैं पढ़ दूँ आपका भाषण, तो मुस्कराहटमें लिपटी दृढ़तामें उत्तर मिला 'नहीं'। इस नहींमें सर साहबकी विशाल सफलताके आधार और उनके आत्म-विश्वासकी सुन्दर झाँकी थी। थोड़ी देरमें वे और भी धीरे-धीरे पढ़ने लगे, तो साहूजीने फिर कहा कि भाषण किसी औरसे पढ़ा दें, पर इस बार और भी सख्त उत्तर मिला 'नहीं-नहीं'। तीसरी बार उत्तर मिला 'नहीं भाई'। पर लोग ऊब उठे थे, इसलिए सारी स्थिति आपको समझानी पड़ी और आप मान गये। घोषणा हुई कि आप थक गये हैं, इस

आवश्यकता इस बातकी है कि पं. जुगलकिशोर मुख्तारको अब बुढ़ापेमें पूर्ण निश्चिन्तता मिले जिससे अपने जीवनकी आशाओंको वे आनन्दसे सुरक्षित गोदमें बैठा सकें।

डॉ. कालीदास नाग बृहत्तर भारतीय इतिहासके महापण्डित हैं। उनका अँगरेजी भाषण अधिकारपूर्ण भी था और प्रभावपूर्ण भी। आप न हिन्दीमें बोल पाते। आपके उत्सवकी उपस्थिति अपनी और संस्था दोनों दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण थी और आश्वासन प्रभावनापूर्ण।

जैनधर्म-परिषद्‌में

दूसरे दिन प्रातः जैनधर्म-परिषद् हुई। अध्यक्षपदको एक पण्डित-जीने भाषण आरम्भ किया। बाबूमणीन्द्र कुर्सीपर वे बैठे भी थे यह कहते हुए कि 'हाँ मुझे अपनी बात कहनेका समय अवश्य मिले।' अब क्या बताऊँ कि उस समय मनमें क्या भाव उठे।

सभानायक श्री अजितप्रसाद जैन सभापति थे। वे मेजपर हाथ मोड़ अपनेको मैनाक-मैनाककर उन्होंने सभासे पूछा कि यह परिषद् कितनी देर चले? तै हुआ कि दो घण्टे। अब वे वक्ताओंकी मिनिटें जोड़ने लगे कि किसे कितना समय मिले? कहा गया कि सभापतिको इस सम्बन्धमें पूरा अधिकार है तो अभी भारतचारित्रामें बोले 'मैं आपके दिये अधिकारोंका दुरुपयोग नहीं करना चाहता।' इसपर डॉ. हीरालालजीने ओरियण्टल कान्फ्रेन्सके पेपर पढ़नेके नियम होते हैं समझाये पर आप उनसे ही पूछते रहे। जैनेन्द्रजीने कहा 'मैं तो एक मिनिट लेना भी समयका दुरुपयोग समझता हूँ।' पर आपके लिए यह व्यंग्य भी शक्तिहीन रहा। बड़ी मुश्किलसे तै हुआ कि आप जो चाहें करें। इसपर आपने एक नया प्रश्न खड़ा किया कि 'मैं कितने मिनिट लूँ?' चारों तरफसे आवाज आयी 'पन्द्रह मिनिट'। तब आप बोले 'नहीं सिर्फ एक बावनी पढ़े।' जयमालाभाषियोंने गद् होकर कहा 'पन्द्रह मिनिट!' तब आप मैदानमें

कम मूर्खताएँ नहीं कीं पर इस प्रस्तावको लाकर तो और भी बड़ी मूर्खता कर रहा हूँ। मैं इसका ट्रस्टी इसलिए बना कि और कुछ उपाय ही नहीं है। यह बतानेके बाद कि मैं अकिंचन हूँ और शान्तिजीके किरायेसे यहाँ तक आया हूँ बड़े दर्द भरे स्वरमें उन्होंने कहा 'मेरी इच्छा थी कि मैं सम्मेदशिखर जाऊँ, पर क्या पैदल जाऊँ? मेरे पास किराया नहीं है।' भाषणका अन्त था — 'मुझे भगवान्‌की ओरसे मालूम हुआ है और जनताकी ओरसे मालूम हुआ है कि मेरी यह मूर्खता बुरी नहीं है।' भाषणमें चारों ओर कुहरे-सी छायी करुणा में बहुत ऊँची सतहसे बोली। काश यह भाषण तीन हजार वर्ष पहले हुआ होता तो निश्चय ही दुनिया उन्हें एक 'इलहामी सन्त' बना डालती!

दिगम्बर जैन संघ के मन्त्री पण्डित राजेन्द्रकुमारजीने इस आयोजनकी बहुत प्रशंसा करनेके बाद सुझाव रखा कि इस महत्त्वपूर्ण प्रस्तावपर खुले अधिवेशनमें विचार हो जिसमें सब संस्थाओंके प्रतिनिधि इसमें भाग ले सकें। यह एक 'बाउण्डरी हिट' था। तभी सभापतिका भी मस्तिष्क जाग पड़ा — 'ऐसे प्रस्ताव खुले अधिवेशनमें आएँ। यहाँ विज्ञानकी बात कीजिए।' प्रस्ताव स्थगित हो गया और ऐसा स्थगित कि फिर खुले अधिवेशनमें भी न उठा।

गठित शरीर और अपने ही प्रयत्नों-द्वारा गठित व्यक्तित्व पण्डित राजेन्द्रकुमार सामाजिक जीवनके दूर मार्चेके लिए फिट भी और प्रस्तुत भी। अपने बिरलेकी भजनेके कारण बार-बार सम्हालते हुए धम्म पर वे बोले। सरल शैलीमें सरस और सम्पूर्ण — विद्वानोंके लिए भी और जनताके लिए भी।

सभापतिका भाषण जैन साहित्यके विकास विभागकी महत्त्वपूर्ण नजरी' थी। लिखित भाषण होनेपर भी वे मौलिक बोले और सब बोले। डाक्टरी और गुणी आँखें और तस्वीर मुख जैसे सारा जैन साहित्य

उनके सामने विषय था और अपने अध्ययनके प्रकाशमें-से वे अभी चुन-चुनकर ये विचार दे रहे थे।

जैनकला-परिषद्में

गलेमें माला, सिरपर मद्रासी पगड़ी, लम्बे छरहरे मद्रासके श्रीराम चन्द्रनका सभापतित्व ही इस परिषद्की विशेषता थी। उनके एक सौ चार पृष्ठके भाषणका सार ही हमने सुना। यह भाषण जैनकलापर एक अधिकारपूर्ण 'डाकूमेण्ट' है और इसे पूरा पढ़कर कोई भी भारतीय अपने अतीतपर गर्वित हुए बिना न रहेगा। ओह, जैन समाज कितनी महान् सम्पदाका स्वामी है।

सप्तमी सुपार्श्वमेन के पी मित्रा और हीरालाल बोके जैन पेण्टिङ्गपर, कथा साहित्यके उद्गमपर और कुछ मूर्तियोंके वैभवपर दोनों सरल संक्षिप्त और उपयोगी।

इतिहास-परिषद्में

श्री नेमिचन्द्र जैन एम एस-सी की कविताने इतिहास परिषद् आरम्भ हुई। बिना बँधरे, बिना हँसाके सिधु-से सरल और उसी तरह मुसकराते सभापति श्री हीरालालने अपना अध्ययनपूर्ण भाषण पढ़ा।

श्री मित्राका निबन्ध अंगरेजीमें था और पं नाथूराम प्रेमीका 'यापनीय सम्प्रदाय' पर भाषण हिन्दीमें। प्रेमीजी जैसे रहन-सहनमें सादे हैं वैसे ही भाषणमें और जैसे व्यापारमें कायमी हैं वैसे ही तथ्योंके संकलनमें। प्रो जीवनमें अध्ययन भी है और श्रम भी। कवि पुष्पेन्दुकी 'अतीत स्मृति' पर परिषद् समाप्त हुई।

साहित्य-परिषद्में

इस श्वेताम्बर मन्दिरमें दिगम्बर और श्वेताम्बर इकट्ठे वीर-शासन महोत्सव मना रहे हैं यह प्रसन्नताकी बात है। बापी कब किसी यह

महत्त्वपूर्ण नहीं महत्त्वपूर्ण तो वह वाणी ही है। पूज्य पण्डितोंसे प्रार्थना है कि व विचारोंपर जोरके भावसे सम्मति तो दें पर अनुचित बल नहीं। विभिन्न सम्प्रदायोंके साथ हमें सहयोग करना है तो फिर श्वेताम्बर दिगम्बरोंके एक ही भगवान् हैं उनमें यदि मतभेद हो भी तो वह शास्त्रीय ही है, जीवनमें उससे विभेद नहीं आना चाहिए। विचारोंकी विभिन्नतामें जीवनकी एकता ही तो हमारी संस्कृतिकी विशेषता है। इन शब्दोंके साथ बाबू शान्तिप्रसादजीने साहित्य-परिषद्का काम आरम्भ किया। आजकी परिषद् एक श्वेताम्बर मन्दिरमें बुलायी गयी थी और सभापति दो नाम थे। मैंने ब्रजभाषा-परिषद्में भी अनुभव किया था कि मातृभूमिक मनमें एक विशाल जैन संघका राष्ट्रीय स्वप्न है और यहाँ भी विचारात्मक बाधक विभेदोंको जोड़नेमें वे एक कड़ीकी तरह हैं।

श्वेताम्बर बन्धु श्री अमृतलालने कहा कि पचीस वर्षोंमें जैन आज पहली बार श्वेताम्बर-दिगम्बर बन्धुओंको मिले देखा है और इसका अर्थ है कि हम भगवान्की वाणीके जिसका आधार विश्व-बन्धुत्व है प्रचारकी पात्रता ले रहे हैं। सर सेठ हुकमचन्दजीने भी एकताकी अपील की। इसी भावकी एक कविता पढ़ी गयी और भगवान् महावीरकी जयसे हॉल गूँज उठा। इतनी सम्पूर्ण जय-ध्वनि मैंने इस उत्सवमें पहली बार सुनी।

“अब पण्डित जैनेन्द्रकुमारका भाषण होगा” सभापतिने कहा और जैनेन्द्रजी आये — मुझे दो जैनेन्द्रकुमार कहा गया इसमें बहुत कुछ मेरे अनुसार छोड़ने लायक है। पण्डित मैं नहीं कुमारकी सीमा पार कर गया इन्द्रत्व मुझमें है नहीं जैन ही मैं हूँ। इसके बाद उन्हें जो कहना था वे उसमें लीन हो गये। यहाँतक कि सभापतिका घण्टा भी बजता रहा और जोरसे कुरता खींचनेपर ही उनकी लीनता टूटी। भाषण बड़ा सुन्दर था। उसमें सबके मनको एकताका आधार बताया गया था।

'सबके आदमियो कोई कामकी बात करो!' यह अमृतलालजीका पण्डिताऊ वहमके विरुद्ध विद्रोह था। आजका प्रस्ताव था कि एक समझौ

बने जो परस्पर सम्पर्कके लिए प्रयत्नशील हों। भाई श्रीपतप्रसादजीने इस खाईको उत्साह-द्वारा पाटनेके लिए बीस तरुणोंका आह्वान किया। इस आह्वानमें हृदयकी पीड़ा न थी — पीड़ाका करुण अभिनय ही था।

प्रो॰ बरुआने मुझसे पहले भारतकी दशापर एक भाषण दिया और तब सभापतिजी बोले। दोनों भाषण सुन्दर थे। इस प्रकार साहित्य-परिषद् का अधिकतर समय जीवन-साहित्यपर विचार करनेमें ही लगा।

फिर खुला अधिवेशन

रातमें खुला अधिवेशन हुआ। आज पत्रकार पण्डितोंका राज्य था — खूब शास्त्रचर्चा हुई और महोत्सव समाप्त हो गया। उसके संस्मरण भी समाप्त हो गये पर मेरी आँखोंमें अब भी यह किसकी तसवीर है? यह न भाषण देता है न रिपोर्ट पढ़ता है न झपटकर चलता है। अपने ही किसी ध्यानमें डूबा इधर-उधर होता रहता है। बहुत-से लोग आते हैं, इसके कानमें कुछ कहते हैं और यह उनके कानमें कुछ कह देता है। जो प्रमुख लोग आते हैं उन्हें नमस्कार करते हैं और मुसकराकर यह उन्हें उपयुक्त स्थानपर बैठा देता है। ये स्वागतमन्त्री और इस महोत्सवके संयोजक श्री बाबू छोटेलाल जैन हैं जो इस उत्सवकी सांस्कृतिकताके प्राण हैं, ये ही विशेषज्ञोंको यहाँ खींच लानेवाले डोर हैं और जिन्होंने प्रस्तावित एकेडेमीको पचास हजार रुपयोंके साथ अपना जीवन भी दान दिया है। उनकी कार्यपद्धति और जीवनवृत्तिको देखकर मैंने सोचा ऐसे व्यक्ति ही किसी निर्माणके प्राणपुरुष हो सकते हैं। उन्हें प्रणाम।

०

पराभियोंके परिस्थिति-चक्रोंमें पड़कर भी अजेय और आज भी विश्वमें अनुपमेय !

भारतीय राष्ट्रकी सामूहिकता ! जिस राष्ट्रके उच्च शिक्षितोंमें भी केला खाकर छिलका सड़कपर फेंक देना साधारण बात है, उसमें सामूहिकता कहाँ ? कितने हैं जो सार्वजनिक वस्तुओंके प्रति आत्मीयता रखते हैं, फिर जब आत्मीयता ही नहीं तो सामूहिकता कैसी ?

प्रश्न चुटीला होकर भी अपनेमें सत्यको समाये है, पर सम्पूर्ण सत्य नहीं है। गंगा क्या है ? हमारे देशकी एक नदी। गाय क्या है ? हमारे देशका एक पशु। पीपल क्या है ? हमारे देशका एक वृक्ष। वेद क्या है ? हमारे देशकी एक पुस्तक। हिमालय क्या है ? हमारे देशका एक पहाड़। समुद्र क्या है ? हमारे देशका एक जलोच्चय। यह बुद्धिकी बात है, पर हमारे हृदयमें इन सबके प्रति एक वन्दनीयता व्याप्त है। यह वन्दनीयता क्या है ? नागरिककी राष्ट्रकी सम्पूर्णताके प्रति आत्मीयता — राष्ट्र हमारा है, उसकी हर चीज हमारी है, हमें प्रिय है। इस आत्मीयताकी कोखसे ही उस बलिदानकी उत्पत्ति है, जो राष्ट्रकी रक्षाके लिए हमारे देशमें सदा सुलभ रहा है और जिसके बलिपन्थी इतिहासमें जिसकी कोई उपमा नहीं !

यह आत्मीयता यह सामूहिकता यह वन्दनीयता ज्ञानकी गोदमें पनपी जो हमारा साहित्य साक्षी है।

यह आत्मीयता यह सामूहिकता यह वन्दनीयता आज अज्ञानकी छायामें खेल रही है, इस कुम्भमें हमने देखा।

यह आत्मीयता यह सामूहिकता यह वन्दनीयता मरी नहीं सहेजकर, सँवारकर फिरसे यथास्थान प्रतिष्ठित करनी है, यह हमने कुम्भसे सीखा !

पटमाला — दूर-दूर खड़े पर्वतोंके मध्यमें बहती गंगाकी धाराएँ और उनके दाहिने तटकी पतली-लम्बी पटरीपर खड़ा हरद्वार ! हरद्वारसे कनखल तक कोई चार मीलका लम्बा तट। निर्मल जल गहरा जल उस

तक तट, तेज प्रवाह और वर्फीली शीतलता गंगोत्रीसे गंगा सागर तक ऐसी गंगा कहीं नहीं !

कथा है कि भगीरथके तपसे गंगा स्वर्गसे उतरी और शिवकी जटाम समा गयी। वहाँसे भगीरथ आगे-आगे मार्ग दिखाते चले और पीछे-पीछे शिव गंगाको छोड़ते हुए। हरद्वारमें आकर उन्होंने जटा झाड़ दी और गंगासे कहा 'जा अब तेरा जिधर जी चाहे चली जा !' पुराणकथाके अनुसार जिस स्थानपर यह घटना घटी उसीका नाम है ब्रह्मकुण्ड।

हमारी इन कथाओंमें इतिहास और दर्शनका कवित्व सुरक्षित है। अब समय आया है कि इस कवित्वके इतिहास और दर्शनकी खोज हो !

आज तो कनखल हरद्वारका एक अंग है, पर दो-ढाई हजार वर्ष पहले हरद्वार ही कनखलका अंग था। महाकवि कालिदासने अपने 'मेघदूत' में मेघको मार्ग बताते हुए कहा है,

तस्माद्गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णां
जह्नोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपङ्क्तिम् ॥

हे मेघ तुम वहाँसे 'कनखलके पास' हिमालयसे उतरी गंगाके तट जाना जिसने सगरकी सन्तानको स्वर्गमें भेजनेका काम किया था।

स्पष्ट है कि कालिदासके समय हरद्वार नहीं कनखल ही देशमें प्रसिद्ध था। 'अनुकनखलम्' में यह इशारा है कि ब्रह्मकुण्डका धार्मिक महत्त्व उन दिनों भी था ही ! कनखलका राष्ट्रीय महत्त्व तो स्पष्ट ही है। भारतके सबसे पहले राजा हैं दक्ष प्रजापति और कनखल थी उनकी राजधानी ! इस तरह कनखल – आजका एक मामूली कस्बा कनखल—हमारे देशकी और शायद संसारकी सबसे पहली राजधानी है और मेरा विश्वास है कि कनखल आज कितना भी उदास क्यों न हो कलका भारत एक दिन समारोहके साथ उसे अभिनन्दन देगा।

हरद्वारका मुख्य महत्त्व यह है कि यहीं पहली बार गंगा समतल भूमिपर आती है – ब्रह्मकुण्ड गंगाकी समतलका प्रथम पत्थर, यह मस्तिष्कका

ज्ञान और ब्रह्मकुण्डका स्नान स्वर्ग और मुक्तिका एक सरल साधन यह कोटि-कोटि जनताकी भावनाका सिंहद्वार। इस ज्ञान और इस भावनाका संगम यहीं समन्वय भारतका एक महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक सूत्र है।

हरद्वारमें लोग स्नान करने भी आते हैं और सैर करने भी। स्नान करनेवाले सैर न करते हों और सैर करनेवाले स्नान, सो बात नहीं पर दोनोंकी मानसिक दिशाएँ अलग-अलग हैं। स्नान करनेवालोंका दिशाबिन्दु है — ब्रह्मकुण्ड! वे हरद्वार क्षेत्रमें सौ घाटोंपर गंगा-स्नान कर लें पर ब्रह्मकुण्डमें स्नान न करें तो उनकी यात्रा उनके लिए व्यर्थ रही।

कुम्भपर्वका एक दिन ब्रह्मकुण्डका छोटा-सा स्थान दस लाखसे ऊपर की भीड़ और भीड़ माने अप्रतिहत भर-मारी। फिर उस दिनमें भी कई घण्टे साधुओंके ही स्नानके लिए सुरक्षित और ब्रह्मकुण्ड तक जाने-आनेके मार्ग सँकरे-बेढंगे, एक असम्भव घटना है कि दुर्घटना न हो—हर कुम्भ कालोंकी एक भगदड़ी देखकर ही समाप्त हुआ है।

एक चित्र विषम स्थितिके अनुमानकी सम्भावना है। ब्रह्मकुण्ड बिड़ला टावरसे रोड़ियोंके तट तक गंगामें लगभग एक फर्लांग घाट को पाटता सिक्खोंका एक पुल और उसे लांघता एक लोहेका रस्सा। साधुओंके स्नानका समय होनेके कारण ब्रह्मकुण्ड तक जानेके सब मार्ग बन्द। अब कुछ मनुष्य रोड़ियोंके तटसे बन्दरोंकी तरह उचटें पर रस्सेपर लटके कि सूखे-सूखे वे गंगाका पूरा पाट पार कर ब्रह्मकुण्ड जा उतरें और एक गोता मार लें। यह मृत्युका मार्ग था—स्वर्गका पुराण-वर्णित पथ भी इससे कठिन तो क्या होगा? एक डुबकीके लिए, जीवन ही दाँव देनेका यह खतरा!

कुम्भके पर्वका समय और ब्रह्मकुण्डमें स्नान चाह नया भाव है, पर यह कैसे हो? तीन सालकी एक छोटी-सी टुन-मुन बच्ची और चार साले-के पौत्रके हल्के भाई भवानी मिश्रकी दुकानसे लौटे और प्रातःकाल

कहा है ? ठीक है पर विश्वास सत्यज्ञानपर आश्रित हो या वहम-संस्कार पर यह श्रद्धाका पिता है। इस श्रद्धाका ही एक रूप है अन्ध-श्रद्धा और यह कुम्भ इस अन्ध-श्रद्धाका इस युगमें सर्वोत्तम प्रदर्शन है।

श्रद्धा सेवनीय है अन्ध-श्रद्धा वर्जनीय। नवयुग श्रद्धाकी अन्धता दूर करनेका अंजन निर्माण कर रहा है, पर क्या कोटि-कोटि नर-नारियोंके मानसपर छायी यह अन्ध-श्रद्धा इतने ही विचारकी पात्र है ? गहरे-गहरे और गहरेसे गहरे उतरकर मैंने अपनेसे कहा कि हमारे विश्वविद्यालयका कोई प्राध्यापक एक महानिबन्ध (थीसिस) लिखकर आचार्यता (डाक्टरेट) ले ले इससे कम हमारे राष्ट्रकी अन्ध-श्रद्धाके कोषमें तो इतनी विचार-सामग्री है। और यह इतनी ठोस न होती तो बुद्ध महावीर और गान्धीके तीव्र प्रकाशमें भी कैसे ठहरती ?

इस राष्ट्रमें अन्ध-श्रद्धाके प्रवर्तक हैं राष्ट्र-पुरुष श्री कृष्ण — गीताके गायक महान् राजनीतिज्ञ योगेश्वर कृष्ण !

रामके द्वारा सुव्यवस्थित समाज-मर्यादा युग-युगोंके वाद-प्रतिवादसे बिखर चली थी। महाभारतका युद्ध इसी बिखरावटका प्रदर्शन था — प्रदर्शन भी और उसे रोकनेका प्रयोग भी। इसीके बीचमें एक दिन श्री कृष्णने अर्जुनसे कहा था "कार्यमहमेवापि संवादम् अनुमहसि ?" समाजकी मान-मर्यादाके रीति-रिवाजके जो कार्य अर्जुन तुझे आगे करने योग्य नहीं जँचते हैं लिहाजसे भीगे हैं उन्हें भी तू करता चल क्योंकि तुझे देखकर समाजके दूसरे लोग भी उन्हें करेंगे नहीं तो वे भी छोड़ देंगे। यह लोकसंग्रह ही श्रीकृष्णका अपरिवर्तनवाद परम्परावादका पिता है और इसीकी पूजी है अन्ध-श्रद्धा जो रामके स्वरूपकी पूजा करती है उनके तत्त्वका — मर्यादापालनका — अनुशीलन नहीं !

महाभारतमें मुसलमानी राज्य तक यह बिखरावट बढ़ती चली जाती

रही और अंगरेजी राज्यने तो उसे सात-सात प्रयत्नोंसे पूर्णता तक पहुँचा दिया। इस प्रकार हजारों वर्षोंके लम्बे समयमें हमारा राष्ट्र शस्त्रहीन शिक्षाहीन उद्योगहीन ही नहीं हुआ जीवनहीन हो गया पर आश्चर्य से भी अधिक शक्तिशाली आक्रमणों और अंगरेजोंके षड्यन्त्रकारी घोर प्रयत्नोंके बाद भी यह राष्ट्र आत्मविश्वाससे हीन नहीं हुआ इसका रहस्य यही है कि जनताका संस्कृति – जीवन दर्शनके मूल स्रोत – से सम्पर्क बना रहा और यह विश्वके सांस्कृतिक इतिहासका कितना बड़ा चमत्कार है कि इस महान् सम्पर्कका सूत्र है अन्ध-श्रद्धा – तर्कहीन विश्वास और यों अन्ध-श्रद्धाने हम अन्धों शताब्दियों तक जीवित रखा।

कुम्भमें हमने यह भी देखा कि यह अन्ध-श्रद्धा कितनी गहरी है और यह भी कि यह अब कितनी सड़ गयी है। कुछ नमूने ये हैं

कन्धेसे टखनों तक मूलता चोगा – गहरे काले कपड़ेका सिरपर बने हुए बालोंकी जटा माथेपर सिन्दूरका तिलक आँखोंमें सुरमेकी काली मूँहमें बनी हुई लाल लम्बी लटकती जीभ एक हाथमें खप्पर और दूसरा आशीर्वादकी मुद्रामें उठा हुआ देखनेमें काली माई, असलमें बहुरुपियेकी कला।

कोने-कोनेमें फैली लाखोंकी भीड़में एक भी मानव ऐसा नहीं जो न जानता हो कि यह काली नहीं पर स्त्री-पुरुष उसके पाससे गुजरते हैं हाथ जोड़ते हैं पैसे खप्परमें डालते हैं और बालकोंसे उसके पैर छुआते हैं। बहुरुपिया चतुर है, वह बालकोंके सिरपर हाथ रखता है और इस प्रकार माता-पिताको कृतार्थ करता है। एक सप्ताहमें इस बहुरुपियेके खप्परमें एक हजार रुपयेसे अधिक पड़े। पूजा भी और व्यापार भी!

सजा-सजाया विशाल हाथी ऊपर चाँदीका बहुमूल्य हौदा उसपर विराजमान महन्तजी और हाथी बाजारके बीचमें! आते-जाते नर-नारी

गया करे तो भजनमें लीन रहे और महसूस करे तो वह दुःख और हीनता-में ग्रस्त रहे।

इसबार उत्तर प्रदेश सरकारके मद्य-निषेध योजनामें एक है पर साधु-समाजके अनुरोधपर कुम्भके दिनों प्रान्तीय सरकारने इस निषेध-क्षेत्रको प्रयोग-क्षेत्र मान लिया था। पता नहीं भविष्यका विचारक इसके लिए प्रान्तीय सरकारकी प्रशंसा करेगा या और निन्दा?

यह हो रही है कथा। पण्डितजी तख्तपर हैं और जनता भूमिपर। पण्डितजी भाषा निपुण व्यक्ति सुसज्जित हैं पर मंच पड़ा हुआ है और वहीं उनका आसन स्वीकार है। भीड़ काफी है और कोलाहल तो है ही। पण्डितजी कुछ बोल रहे हैं बोले जा रहे हैं, यह कानोंके बलपर नहीं आँखोंके सहारे ही मैं कह रहा हूँ क्योंकि होंठ हिलते तो दीखते हैं कानों-में कोई शब्द नहीं पड़ता – उनके द्वारपर तो कोलाहलका ही कब्जा है। अब दृश्य यह है कि पण्डितजीके होंठ फड़क रहे हैं, श्रोता उन्हें देख रहे हैं कथा है पर शब्दहीन जैसे यह मूक सिनेमाका कोई दृश्य हो!

मैं खड़ा-खड़ा यह दृश्य देख रहा हूँ और सोच रहा हूँ कि महात्मा गान्धी और पण्डित नेहरूकी सभाओंमें माइक स्वीकार करनेके पहले ही जो लोग हल्ला मचाकर नाकमें दम करते रहे हैं, वे यहाँ एक भी शब्द सुनाई न देनेपर शान्त मौन क्यों बैठे हैं? बड़ा पैना प्रश्न है, जो उभर रहा है और तब लगता है कि वे बैठे हैं तो सन्तुष्ट हैं कि सुनाई नहीं देता तो नहीं देता पर दृश्य तो है।

देशकी आत्मा आज व्याख्यानसे कथाके अधिक निकट है यह एक तथ्य हाथ आया। इसकी व्याख्या मैंने यों की कि हमारा राष्ट्र धर्मसे निकला और राजनीतिसे पुष्ट है और हम अपनेको खोकर अन्य-भाषाकी छायामें आश्रित हैं।

जनयुगके पत्रकारको अपनेसे पूछना पड़ता है : 'युगकी जिस धारा में हमारे देशके राजा तिनकोंसे भी सस्ते बह गये उसमें धनिक ये राजा कब तक टिके रहेंगे ?'

प्रश्न बड़ा बेढब है पर इसका उत्तर उस दिन मिला जिस दिन धातुप्रसाद जगद्गुरु शंकराचार्यका जुलूस निकला। आगे-आगे दो हाथी उसके बाद घोड़े-सोनेके आसे-बल्लम और मखमली पंखे और तब चाँदीकी अम्बारीमें विराजमान जगद्गुरु पीछे हजारों सन्यासी।

यह अम्बारी इतनी विशाल और बोझल कि हाथीकी कमर, पर यों तो यह अपने कन्धे और छूटे शासनको विषय हो पर आज यह शायद मानवीय कन्धोंपर प्रतिष्ठित और ये कन्धे न भक्तोंके न शिष्योंके कुछ पैसोंपर आये गये मजदूर मानवोंके जिनकी देह फटे-मैले वस्त्रोंसे ढकी हुई – हाँ मन नहीं दीखते तो ढकी हुई ही। पैर मेरे और मैं देख रहा हूँ कि ये शायद तीन मानव पिसे जा रहे हैं भीड़से भी और बोझसे भी।

मनुष्य कुछ पैसोंके बलपर किसी मनुष्यको वाहन बना उसपर चढ़े यह अहंकारकी परिसीमा है!

मनुष्य कुछ पैसोंके लिए अपने कन्धोंपर किसी मनुष्यको ढो चले यह विवशताकी परिसीमा है!

जहाँ ये दोनों परिसीमाएँ मिलती हैं वहीं जनयुगके पत्रकारका संतप्त प्रश्न अपना समाधान पाता है – हमारे देशमें अबतक दीनता है – मानसिक दीनता आर्थिक दीनता सामाजिक दीनता – इसीसे वह अम्बारी है और जिस दिन यह दीनता युगका सहारा ले सक्रियका रूप धारण करेगी उसी दिन उसी क्षण ये कन्धे वहाँ न होंगे और यह अम्बारी धड़ामसे धरतीपर आ गिरेगी।

इस धड़ामके साथ सब दिशाओंसे एक गूँज उठेगी – 'अब यहाँ कोई राजा नहीं रहा!' और हमारे कान सुनेंगे – सामाजिक समानताकी जय!

प्रश्नके समाधानसे मुझमें जो उत्साह जगा उसने मुझे विचारके एक नये द्वारपर खड़ा कर दिया — हम धार्मिकताके प्रति हमारे आकर्षणका केन्द्र-बिन्दु क्या है ?

यह केन्द्र-बिन्दु है परलोक !

और यह परलोक हमारी किस मानसिक वृत्तिका प्रतीक है ?

अमर जीवनका।

और अमर जीवनका रहस्य क्या है ? स्वरूप क्या है ?

जीवनमें निरन्तर कष्ट-संकट और परलोकमें पूर्ण सुख-शान्ति। तो परलोककी भावना इस जीवनको शुद्ध सम्पन्न रखनेका प्रेरक प्रकाश है और यों जीवन है यात्रा और परलोक है लक्ष्य — एक है सफर दूसरा है मंजिल !

कितना अफसोस है इस विचारमें पर यह भी तो सही है कि हम आज जीवनकी शुद्धताको खोकर, बाह्य कर्मकाण्डोंके सहारे परलोकका सुख चाहते हैं। कोई उस यात्रीकी तरह जो यात्राका कष्ट उठाये बिना ही तीर्थपर पहुँचनेका सुख चाहता है — तीर्थकी तसवीरें और दूसरी चीजें अपने घरमें रखकर !

मैं सोच रहा हूँ और देख रहा हूँ कि यहाँ जमघट स्नान कर रहे हैं उनके सामने ही तटपर खड़ा है एक पण्डा अपनी भरी-सी बहिया लिये और एक यजमान बैठा है बहियाके पास ! बहियाके पन्नोंकी स्याही यजमानके अँगूठेमें लगी है, उसीमें रखा है सवा रुपया और थोड़ा गंगाजल। पण्डा जी बोल रहे हैं संस्कृत — कुछ शुद्ध कुछ अशुद्ध और कुछ अगड़-बगड़ सब मिलाकर इसका अर्थ है "मैं यजमान स्वर्गके मार्गमें स्थित वैतरणी नदीको सुखपूर्वक पार करनेके लिए यह गौ अपने पुरोहितको दान करता हूँ।"

पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दियोंमें यूरोपके पादरी जिनसे कुछ लेकर ईसाके नामपर पापमुक्तिका प्रमाण-पत्र बेचा करते थे, यह गोदान क्या

उसोकी भारतीय प्रतिलिपि नहीं है ? इसी प्रसंगका रूप प्रश्न है यह — तो क्या मानसिक विकासकी दृष्टिसे हम अभी पन्द्रहवीं शताब्दीमें ही जी रहे हैं ?

यह धार्मिकता कुछ भी हो अब जीवित नहीं रह सकती पर हाँ इस घोषणामें एक भ्रमकी सम्भावना है — क्या वशिष्ठ विश्वामित्र पतंजलि कृष्ण और अरविन्द-द्वारा पोषित हमारी अध्यात्मसाधना भी बह जायेगी ? ना यह शाश्वत सत्य है धार्मिकताकी यह प्राचीर टूटते ही यह सत्य अधिक चमकेगा और जीवनमें सुलभ होगा ।

यों समझना है कि अध्यात्म है निधि । वह समयके घात-प्रतिघातोंमें खतरेमें पड़ चली तो उन्होंने धार्मिकताकी झाड़ी उसपर रोप दी । यह झाड़ी खूब फली-फूली और निधिपर छा गयी पर समयके चलते घात प्रतिघातोंमें निधिको लोग भूल गये और उससे भी आगे यह कि यह झाड़ी ही वह निधि मानी जाने लगी । नवयुगका माली इस झाड़ीको छाँट रहा है कि वह निधि प्रकाशमें आये । यह शुभ है पर मूर्ख नागरिक नाखून काटनेको उँगली काटना मानकर चिल्ला उठे तो नाई क्या करे ?

मूर्ख नागरिककी यह चिल्लाहट भयावह है, इसके साक्षात् अनुभवका अवसर कुम्भम था । एकत्रित जनताकी मानसिक दशाका गम्भीर अध्ययन बताती है कि राष्ट्रमें सांस्कृतिक जागरणका क्षेत्र तैयार है पर प्रश्न यह है कि उसे कौन बोये ? क्या यह काम स्वतन्त्र राष्ट्रकी शासन-संस्था कर सकती है ? या यह तो अधिकसे अधिक सामाजिक नैतिकता तक ही जनताको ले जा सकती है ।

दुर्भाग्य है कि सांस्कृतिक जागरणका अनुष्ठान करनेको आगे आने नेता विद्वान् और संस्थाएँ, नेतृत्वके मोहमें भटककर राजनीतिक परिवहमें फँस-उलझ जाते हैं । निश्चय ही अध्यात्मसे नीचे गिरकर प्रचारमें पड़नेवाले ये लोग संस्कृति-रक्षाके जाली नारे लगाकर भी संस्कृतिके शत्रु ही हैं और यों और बताने पर यह उनका ही नहीं हमारे राष्ट्रका भी अभाग्य है

दुःख नहीं देखा। लोग तो तब भी हँस रहे थे पर मैं बिना रोये न रह सका था। सचमुच बन्धन जीवनके बोझको समाप्त कर देता है। जीवनकी स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है और अस्वाभाविकतामें ही जीवन दिखाई देने लगता है। पर गुलामी और गुलामके प्रति इन पशुओंमें कितना विद्रोह कितनी घृणा है। हमारे समाजमें तो आज भी रायबहादुरों और खानबहादुरों राजाओं और नवाबोंको 'बड़ा आदमी' माना जाता है उन्हें ऊँचा स्थान दिया जाता है। वे लोग गुलामीके संरक्षक हैं और क्या ? काश हमारा समाज भी इनके साथ वही व्यवहार करता जो इन स्वतन्त्र बन्दरोंने उस गुलाम बन्दरके साथ किया था!

भीतरके कमरेकी घड़ीने आवाज दी – टन! साढ़े छह बज गये! मेरे हृदयमें धक्केकी आवाज धकसे लगी। रघुकी छातीमें इसका धक्का भी इससे जोरसे न लगा होगा। रतन अभीतक नहीं आया। आता ही होगा। परन्तु मैं आदमी कितना उतावला हो जाता है! रतन जेबमें डालकर आ रहा होगा पाँच रुपये! हाथमें लिये हुए ही न आ रहा हो? रुपयेकी जगह भला हाथ है या जेब? कोरा मूर्ख है इसे कभी तमीज ही न आयेगी। कहीं गिर जायें तो इसके बापका क्या बिगड़ेगा? दिन-भर दौड़कर बेचारे के हाथमें ये पाँच रुपये आये हैं। उत्साहमें मुट्ठीमें दबाये दौड़ा आ रहा होगा। उत्साहमें भी आदमी पागल हो जाता है।

रतन आ गया। वाह! हाथ तो दोनों खाली हैं उसके। सावधानीसे जेबमें डालकर लाया है। अब शहरमें रहकर होशियार हो गया है। जब गाँवसे आया पूरा मूर्ख था। न कपड़े-लत्तेकी तमीज न बातोंका ढंग, पूरा जौड़मचन्द पर अब देखो उड़ती चिड़ियोंके पर कतरता है।

'उन्होंने आपको नमस्ते कहा है—' बड़े सज्जन आदमी हैं। जहाँ मिलते हैं खुद नमस्ते करते हैं। रुपये देते समय भी यह बात नहीं भूले। मैंने भी उनसे क्या पाँच रुपये मँगाये। कमसे कम दस मँगाता। १४ तारीखको तो भेज ही देते वे!

'—और कहा है जी हमें बड़ा अफसोस है कि उनकी बीमारीका हमें पता ही नहीं लगा। घरपर अकेले थे। बड़ी तकलीफ हुई होगी। नाराज हो रहे थे कि उन्होंने यह तकल्लुफ क्या किया?' कितने सहृदय हैं। खबर हो जाती तो फौरन आते। अपनेपनकी यह बात है। दुःखमें ही अपना-बेगाना दीखता है।

'इसपेक्टरके बारेमें उन्होंने कहा है कि सुबहको हम उधर आयेंगे। उस समय उनकी जो आज्ञा होगी पालन करेंगे।' मैं आसमानसे एकदम जमीनपर आ गिरा। 'सुबहको हम आयेंगे! भला मुझे क्या मारकी चिंता छोड़नी है यहाँ। पता नहीं इन लोगोंकी खोपड़ीमें अक्लकी जगह गोबर भरा है या भूस। चिट्ठीमें साफ लिखा था कि इसी समय पाँच रुपये चाहिए, पर आप कहते हैं कल यहीं आकर आज्ञाका पालन करेंगे। यह तो सुना था कि रुपयेवालोंके दिल नहीं होता पर आज पता चला कि आँखोंकी जगह भी इनके बटन होते हैं। कोई पूछे इन अहमकोंसे कि कल सुबह यहाँ आकर क्या वह मेरे सिरपर चढ़ेगा?

'शिवाजी मेरी तस्वीर छोड़ दो! ईश्वरी आकर अपनी तसवीर मुझे दे गयी। भक्त प्रह्लाद हाथ जोड़े सामने खड़ा है और भगवान् नृसिंह खम्भेसे प्रकट होकर हिरण्यकशिपुका संहार कर रहे हैं। भगवान् थोड़ी-सी देर और करते तो प्रह्लादका काम तमाम हो जाता! क्यों जी भगवान्की यह क्या बुरी आदत है कि अँगरेजी टाइमकी तरह आखिरी घड़ीमें ही जागते हैं? बड़े कठोर परीक्षक हैं। अधिकसे अधिक देर तक भक्तके विश्वासकी परीक्षा किया करते हैं।

टालस्टायने अपनी एक कहानीका शीर्षक रखा है — 'भगवान् देखते हैं पर प्रतीक्षा करते हैं।' है यही बात। 'भगवान्के घर देर है अन्धेर नहीं।' ठीक ही है, भगवान्के घर भी अन्धेर हो जाये तो फिर प्रकाश कहाँ रहे? कैसे आड़े समयमें प्रह्लादकी रक्षा की। वस्तुतः इन उदाहरणों-पर ही जनतामें आस्तिकताकी भावना जीवित है।

नास्तिक और प्रत्यक्षवादी कहते हैं कि ये सब आलंकारिक वर्णन हैं, यह भी कि कोरी गप्पें हैं। ईश्वर कहीं बैठा है जो समयपर आ कूदेगा? बैठा हो या न बैठा हो आ कूदता तो है ही। अच्छा यह कोरा ढोंग ही सही। दुःखियोंका एक सहारा तो है। प्रत्यक्षवादी दुःख और निराशाकी जिन घड़ियोंमें आत्महत्या कर लेता है, ईश्वरविश्वासी परमात्माकी शक्ति और आशाके सहारे उन घड़ियोंमें भी सन्तोष धारण कर पाता है, यह क्या कोई साधारण बात है?

इन नास्तिकोंके लिए और कुछ काम तो रहा नहीं ईश्वरपर ही चढ़ाई कर बैठे — ये भी पूँजीपतियोंके ही भाई-बन्धु हैं। गरीबोंका सारा सुख लूट लिया इन मोटी तोंदवालोंने एक ईश्वरका सहारा बचा है, उसे ये नास्तिक छीनना चाहते हैं। अभागे गरीबोंके अन्धे जीवनकी यह लकड़ी — सन्तोषका अन्तिम सहारा भी इन्हें सह्य नहीं। गरीब बेचारा कहाँ जा मरे? उसे कुछ तो सहारा चाहिए ही पर इन्हें तो अपनी नास्तिकतासे मतलब। कमबख्त कहते हैं और समझते भी हैं कि विश्वके ज्ञानकोषमें एक नया दान दे रहे हैं। जी हाँ बिलकुल नया दान है, पर है जहरकी पुड़िया।

ये आजके वैज्ञानिक भी तो बड़े दानी हैं। भयंकर अस्त्र घातक गैस हवाई तारपीडो अनेक प्रकारके बम। कितने सुन्दर उपहार हैं ये! शैतान अपनेको विश्वके सेवकोंमें शुमार करते हैं पर इन्सान बस घण्टोंमें कैसे तबाह हो सकता है? न्यूयार्कपर मारक गैस बरसाकर उसे एकदम कैसे बरबाद किया जा सकता? बर्लिन और पेरिस एक साथ कैसे उजाड़े जा सकते हैं? टोकियोपर बम बरसाना कहाँ ठीक रहेगा? ये इनकी विश्व-सेवाके नमूने हैं और इस प्रकार ये रात-दिन निरपराध गरीब जनताको उजाड़नेकी चिन्तामें घुला करते हैं पर हममें पढ़-लिखकर होकर भी एक गरीब ग्रामीण परमात्माके जिस सहारेपर शान्तिसे मर सकता है उसे ये नास्तिक छीने ले रहे हैं। इन गरीबोंको ये आखिरी घड़ियाँ भी शान्तिसे क्या मरें?

अरे भाई, तुम्हारा ही कहना ठीक सही, तुम आकाश हवाई जहाजमें बैठकर सुराखा पर देख आये हो और आकाश यह उजड़ा पड़ा है, यहाँ कोई नहीं रहता, यह सब कोरा ढोंग है, पर यह ढोंग कितने गरीबोंका जीवन-प्राण है, इसे भी तो सोचो। बन्दरिया अपने मरे बच्चेको छातीसे चिपटाये घूम रही है। दार्शनिककी दृष्टिमें यह अज्ञान है, पर यह अज्ञान ही उस अभागी माताके हृदयका एक-मात्र सहारा है। हो तुम्हें संसारके दुःखियोंसे क्या मतलब, तुम्हें तो ज्ञान और विज्ञानका सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार मिलना चाहिए। कितने क्रूर हैं ये लोग!

गरीबका भगवान्के सिवा और कौन है? भगवान् ही गरीबकी खबर लेते हैं और अभय देते हैं, पर हाँ! मैं भी तो गरीब हूँ, दुःखित हूँ। इतनी बेचैनी तो उस खम्भेको देखकर प्रह्लादको भी न हुई होगी। सुबहसे कितना परेशान हो रहा हूँ, प्राण कण्ठमें आ गये हैं, पर भगवान् कहाँ है? क्या यह सब सचमुच एक ढोंग ही है। ये प्रत्यक्षवादी लोग कुछ भूल थोड़े ही हैं। आखिर ये लोग भी तो कुछ सोचकर ही परमात्माके अस्तित्वसे इनकार करते हैं। बड़े विद्वान् हैं ये लोग तो! फिर परमात्मा है और ये लोग उसे माननेसे इनकार करते हैं, तो इन्हें क्षेम क्यों नहीं हो जाती? यह ईश्वर-वीश्वर सब कोरी भावुकता है, पर हाँ, एक बात है। प्रह्लादको तो परमात्मामें अखण्ड विश्वास था — वह तो उसके गरोम आगसे लिपटने-को तैयार था। मैंने तो आज उसका ध्यान भी नहीं किया। उससे मैंने याचना ही कब की? मैं तो दिन-भर अपने ही बलपर दौड़ता रहा हूँ। जो सड़कपर सीधा चल रहा है, उसे कौन सहारा देगा? जो मैं भी नास्तिक हो रहा था। धिक्कार है मुझे। आँखें बन्द हो गयी, मस्तक झुक गया, गला भर आया, पलकें भीग गयीं। व्यथाके भीगे स्वरमें मेरा मन पुकार उठा — मेरे प्रभु, मेरी रक्षा करो। आँसूकी शक्ति अपार है। मन कुछ शान्त हुआ, मैं अपनी गद्दीपर पीछेकी ओर मुड़क गया। तभी बजे आठ!

मौतकी घड़ी सिरपर आ गयी। अब क्या होगा मेरे भगवान् ? खैर, तुम जानो मान हो या अपमान। तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो मेरे नाथ !

'खट्‌-खट्‌-खट्' । मैंने आँख उठाकर देखा हजरत जूता खिसका रहे हैं। कपड़ोंसे लैस और छोटी-सी पोटली हाथमें। भागनेको एक दम तैयार ठीक मेमरेकी टाइमपर आप आये हैं जैसे बैंकसे चैक भुनाने आये हों पर यहाँ क्या रखा है। मैंने तो बहुतेरा प्रयत्न किया पर भगवान्‌की इच्छाको कौन बदल सकता है ? यह देखा — 'मैंने तो बहुत कोशिश की पर क्या करूँ जी रुपये कहींसे मिल ही नहीं सके। असल बात यह है पण्डितजी कि बैंकमें रुपया बाबूजीके नामसे जमा है और मैं उसे निकाल नहीं सकता।' सुनकर बेचारोंको बुखार चढ़ जायेगा। सारी तारीफ खाकमें मिल जायेगी। जो साहब इनके पास तो रुपये भी नहीं। कोठी बँगलोंमें रहते हैं और बने फिरते हैं ऐडीटर, पर तो स्वाभिमानपर चोट लग गयी। भीतर-ही भीतर सैकड़ों गालियाँ देंगे पर मैं क्या करूँ। भगवान्‌की यही इच्छा है तो हो। चला जायेगा कम्बख्त अपना-सा मुँह लेकर और नहीं आयेगा तो एकादशीका व्रत करेगा।

'क्यों भाई यों क्यों पड़े हो ?

'तबीयत खराब है जी !

'खराब ?'

'जी हाँ।

'क्यों क्या बात है ?'

'हार्टफ्रेल हो रहा है मेरा ! मुसीबतमें भी मनुष्य क्या बक जाता है। वे रुककर मेरे पास आये और चौंककर बोले हार्टफ्रेल !

'हाँ जी !

'नहीं भाई घबराओ मत। हार्टफ्रेल हो तुम्हारे दुश्मनोंका। कभी-कभी यों ही जी घबरा जाता है। अभी-अभी बीमारीसे उठे हो फिर भी रात-दिन लिखते-पढ़ते रहते हो यह ठीक नहीं। उन्होंने मेरी नब्ज देखी

क्या समय तब तुम्हारे दर्शन हुए।

पिताजीका स्मरण कर बूढ़ेका दिल भर आया। हो गया होगा कहीं विवाह-यात्रामें परिचय। वे इतने मीठे थे कि मिलते ही आदमीको मोह लेते थे। जानकारीके लिए मैंने पूछा 'आपका मकान कहाँ है चौधरी साहब?' उत्तर मिला 'मेरा मकान रुड़कीके पास एक गाँवमें है भाई।' तब बूढ़ेने धीरेसे पाँच रुपये अपनी धोतीकी गांठसे खोलकर मेरे सामने रख दिये। ओह, ये पाँच रुपये! प्यासी आँखोंसे मैंने उन्हें देखा!

पिताजीका यजमान मालूम होता है बेचारा। उन्हें दक्षिणा देने बीस कोस चला और वहाँसे निराश होकर यहाँ आया। वे नहीं हैं तो क्या उनका उत्तराधिकारी मैं तो हूँ। राज्यकी तरह पुरुष भी तो वंश परम्पराका अनुयायी है। फिर भी मैंने पूछा 'ये कैसे रुपये हैं जी!'

'महाराज १२ सालसे मैं तुम्हारा कर्जदार था। आज भगवान्‌की दयासे उऋण हो गया। वैसे तो मैं जबतक जिऊँगा बड़े पण्डितजीका कर्जदार रहूँगा'।

'कैसा कर्ज मैं आपकी बातका मतलब नहीं समझा?'

'सोमवती मावसपर १९-२ साल हुए मैं अपने बाल-बच्चोंके साथ हरद्वार जा रहा था और तुम्हारे पिताजी भी जा रहे थे। तुम तब बहुत छोटे थे। रेलमें उनसे मेल-मिलाप हो गया। बड़े सज्जन पुरुष थे। अब ऐसे आदमी कहाँ हैं? हरद्वारमें टिकिट लेते समय मेरा बटुआ किसीने काट लिया। मैं दुखी होने लगा। उन्होंने मुझे धीरज दिलाया और पाँच रुपये दिये। तुम्हारी माँने मना भी किया। तुम जानो औरतोंका दिल छोटा होता है उन्होंने कहा 'आदमी आदमी ही आदमीके काम आता है।' तबसे हर साल सोचता रहा मौका ही न लगा। बड़ी मुश्किलसे अबकी बार बालक देखा सो आज तुम्हारे दर्शन कर लिये।

गाड़ीका समय समीप आ रहा था और मेरे पहले मेहमान आकर बतला रहे थे। मैंने पुत्रोंसे दो रुपये उन्हें भेंट कर दिये। ईश्वरीका

तकाजा आ पहुँचा – 'कोई दो मेरी तसवीर पिताजी?' मेरा ध्यान चित्रपर गया। भगवान् नृसिंह खम्भेसे प्रकट अत्याचारी हिरण्यकशिपुका वध कर रहे हैं। मैंने मन-ही-मन भावनाके स्वरमें कहा 'प्रह्लादके यहाँ तो तुम खम्भेसे प्रकट हुए थे पर मेरे यहाँ तो वह खम्भा भी नहीं था। यहाँ तो मेरी देह! तुम धूम्रमें साकार हो उठे। तुम्हारी माया अपार है मेरे प्रभु!' और तभी वे वृद्ध भी खड़े हो गये – 'अच्छा चल रहा हूँ मुझे भी इसी गाड़ीसे जाना है पण्डितजी!' मनपर छाये भक्तिके आवेशमें विभोर हो उठते-उठते उन वृद्धके पैर मैंने छू लिये।

'हरे राम हरे राम यह क्या कर रहे हो?' वृद्धने कहा और 'आपके दर्शन आज बड़े भाग्यसे हुए।' – यह मेरे मुँहसे निकल पड़ा। वे चले गये। दिन-भरके मानसिक द्वन्द्व और घटनाकी आकस्मिकतासे मैं इतना अभिभूत था कि उनका नाम और पता पूछना भी भूल गया।

ओह, हमारे ही जिलेके देहातका वह अनपढ़ और ग़रीब बूढ़ा जो उस दिन भगवान्के रूपमें बिना बुलाये मेरे द्वार आ गया था पर जो भारतीय चरित्रका एक प्रेरक प्रतीक है।

मसजिदकी मीनारें बोलीं !

मसूरीमें लण्ढौर बाजारसे उतरकर कैमेल्स बैक रोडपर चढ़ते ही सामने खड़ी है एक मसजिद। बचपनसे ही मेरा संस्कार रहा है कि राहमें मन्दिर आये या मसजिद, गिरजाघर हो या गुरुद्वारा, जैन-मन्दिर हो या कबीर-चौरा, मेरा सिर झुक जाता है और मन एक कोमल भावनासे भर उठता है। इस मसजिदको भी मैंने देखा तो झुक गया मेरा सिर और सिर उठाकर जो ऊपर देखता हूँ तो एक अजीब बात कि इस मसजिदमें एक मीनार बड़ी है, एक छोटी ! यह क्यों ? और हाँ, मसजिद में तो कई मीनारें होती हैं, ये दो ही क्यों हैं ? बड़ी मीनार तो गुम्बदकी जगह है पर यह छोटी मीनार एक क्यों ? आगे बढ़कर देखा और समझा – अभी अधूरी है, दूसरी मीनारें अभी बनेंगी। अब जो मैं जरा गौरसे देख रहा हूँ तो दरवाजेपर ताला लगा है और कहीं भी चिनाईका सामान नहीं है। मुसलमानोंके पास खानेको रोटी हो या नहीं, मसजिदके लिए उनके पास पैसेकी कमी नहीं होती। फिर यह मसजिद बीचमें क्यों रुकी पड़ी है ?

पूछनेपर आने-जाते किसीने कहा, "देशके बटवारेके बाद साम्प्रदायिक झगड़ोंके समय यह बन रही थी। झगड़ेमें कुछ मुसलमान मारे गये, कुछ भाग गये, अब उनकी जानको रो रही है यह खड़ी हुई।" व्यंग्यमें जो चुभन थी, उसने मुझे चुटीला किया। एक हिन्दूके लिए यह खुशीकी बात क्यों है कि मसजिद बनते-बनते रुक गयी ? मसजिद रुकी या मन्दिर रुका, दोनों पूजाके स्थान हैं। पूजा ईश्वरकी, फिर जिसका ईश्वरमें विश्वास है वह दोनोंमें भेद कैसे करेगा ? विश्वास जब अन्धा हो जाता है, तब वह इसी तरह देखता है। मेरा मन करुणासे भर गया। कुछ इस तरह बैठे

मेरा अपना घर बनते-बनते रुक गया हो! मेरी आत्मीयता गहरी हो गयी और पासके जीनेसे मैं ऊपर चढ़ गया। अब मैं बड़ी मीनारके पास था।

मीनारें भौचक-सी थीं। सुस्तीकी चादर-सी उनपर पड़ी हुई थी फिर भी वे जाग रही थीं। मैं बड़ी मीनारके पास गया और बहुत ही प्यार-भरे हाथसे उसे थपथपाया। मुझे लगा वह सिहर उठी और घबरायी-सी डबडबायी-सी आँखोंसे उसने मुझे देखा।

बहुत ही कोमल स्वरमें मैंने उससे पूछा 'क्यों तुम घबरा क्यों रही हो?' वह और भी घबरा गयी और हकलाती-सी बोली 'क्या तुम मुझे तोड़ने आये हो?'

मैं सकपका-सा गया 'क्यों मैं तुम्हें क्यों तोड़ूँगा?'

'तुम हिन्दू हो न!' मीनारने कहा।

मैं आवेगकी लहरमें डूब-डूब गया और मनमें आया — इसी मीनार पर चढ़ जाऊँ और वहाँसे नीचे कूद पड़ूँ। अपनेको सँभालकर मैं उससे लिपट गया और कई बड़े-बड़े आँसू मेरी आँखोंसे उसपर टपक पड़े। सान्त्वनाके गम्भीर स्वरमें तब उससे मैंने कहा 'नहीं नहीं मैं तुम्हें तोड़ूँगा क्यों? मेरे लिए तो तुम पूजाकी चीज हो।

मीनारके साँस अब स्वस्थ हो रहे थे। सँभलकर उसने कहा 'माफ करना मैंने तुमपर ऐसा शक किया पर क्या करूँ यहाँ खड़े-खड़े मैं यह सब कुछ देख चुकी हूँ जिसे देखकर यकीन गुरदा हो गया है और धक्की भेद महसूस रही है।

"क्या उसकी कहानी मुझे न सुनाओगी मीनार रानी?" मैंने एक बार फिर उसे प्यारसे थपथपाया।

'वह कहानी नहीं है एक उपन्यास है, वह भी बहुत बड़ा। उसे सुनाना और सुनना दोनों ही मुश्किल हैं इसलिए मैं तुम्हें एक-दो इशारे देती हूँ उनसे तुम जितना समझ सको समझ लेना।

मीनार कहने लगी 'मसूरीकी म्युनिसिपैलिटी बहुत दिनोंसे कुछ कम

समझियाँ मीनारें बोलीं।

पारियोंका अन्धेर-धर हो रही थी। कोमोंने उसे अपने कामका साधन बना रखा था। सरकारने उसे भंग कर अपने हाथमें ले लिया और किदवईको एडमिनिस्ट्रेटर नियुक्त कर दिया। यह एक भला ईमानदार और मजबूत इन्सान था। इसने आते ही इस अँधेरे घरमें व्यवस्थाका दीपक जलाया कि डाकुओंका राज उजड़ गया। स्वाभाविक है कि डाकुओंका यह गिरोह उससे चिढ़ गया और मसूरीमें साम्प्रदायिक बाढ़के आते ही इन डाकुओंने उसे क़त्ल कर दिया।

डाकुओंने एक महात्मा क़त्ल कर दिया बात इतनी थी पर कहा गया ढोल्ली पीटी गयी कि हमने एक गुण्डेको साफ़ कर दिया। कमाल यह कि जिसने उस ढोल्लीको सुना उसकी दाद दी और अपनेमें खुशी मनायी। किसीने भी यह नहीं सोचा कि यह रफ़ीक अहमद किदवई उस किदवई (रफ़ी अहमद किदवई) का सगा भाई था जिसकी सारी ज़िन्दगी देशकी सेवामें कटी और यह उस बूढ़े किदवईका बेटा था एक हिन्दूके हाथों महात्मा गान्धीकी हत्याका समाचार पाते ही जो दुनियासे चल बसा – जिसके दिलकी धड़कन बन्द हो गयी!

यह है पहला इशारा और लो यह दूसरा –

साम्प्रदायिक आगको शान्त रखने और उससे इस सुन्दर नगरकी रक्षा करनेके लिए अट्ठाईस मैजिस्ट्रेट बनाये गये। इनमें कुछ ऐसे थे जिन्हें मुसलमानोंकी कोठियाँ खरीदनी थीं कुछको दूकानें और कुछको इसी तरहका दूसरा सामान!

मैजिस्ट्रेटीका बिल्ला उनकी बाजूपर बँधा होता फ़ौजके दस सिपाही उनके साथ होते और इस तरह इन मैजिस्ट्रेट साहबकी निगरानीमें लूट आग और क़त्ल-आम होते। सभी तो ऐसे नहीं थे कुछ तो बहुत ही ईमानदार थे पर हाँ कई ऐसे थे। एक नवाबकी कोठी लुटी और उसका सामान इस तरह उठा कि जैसे ताला बन्द किये रख रहे हों। इन्हींमें-से एकने एक नागरिकको टेलीफ़ोन किया कि तुम्हारा घर आज पाँच बजे

फूँक दिया जायेगा। तुम फ़ौरन घरसे हट जाओ। मैं मित्रके नाते अपनी जान ख़तरेमें डालकर तुम्हें सूचना दे रहा हूँ कोई और प्रबन्ध न हो तो तुम मेरे घर चले जाओ। यह बेचारा अपने परिवारको लेकर चार बजे ही कचहरी जा बैठा और मैंने आँखें फाड़कर देखा कि पाँच बजे से टेलीफ़ोन करनेवाले सज्जन ही धूमधामसे उस वकीलके घरपर क़ब्ज़ा किये बैठे थे।

मीनारने यहाँ इतना लम्बा साँस लिया कि मेरा साँस दर्दसे भर गया। तब फिर मीनारने कहा 'और भाई इस सब मक्कारीको धर्मकी रक्षाका नाम दिया गया जिसका मतलब कुछ आदमियोंको घबराहटमें डालकर उनकी जायदाद और मालको कम दामों या मुफ़्त हड़प लेना ही था। यानी मुझे तौरपर चोर और डाकू लोग धर्मके रक्षक बने हुए थे और मैं यहाँ खड़ी-खड़ी यह सब देख रही थी।

मीनार अब चुप थी। उसका मन दर्दसे भर-सा गया था। 'ये चोर और डाकू मेरी जातिके थे और धर्मके उस स्वरूपको माननेवाले थे जिसे मैं भी मानता हूँ इसलिए मीनार रानी मैं भी तुम्हारे सामने अपनेको बहुत लज्जित पा रहा हूँ और मेरी समझमें नहीं आता कि मैं तुम्हारे दुख में इस समय कैसे भागीदार बनूँ?' मैंने बहुत ही नम्र होकर कहा तो मीनार ज़ोरसे हँस पड़ी। बोली 'तुमने मेरी बात सुनी पर उसका मर्म नहीं समझा। यह मेरी या तुम्हारी या उनकी जातियोंका सवाल नहीं है, हरगिज़ नहीं है मेरे भाई यह तो अच्छे आदमीका सवाल है। इसमें सत्य की सचाईकी बात तो सिर्फ़ इतनी ही है कि चोर-डाकू और लुच्चे-गुण्डे लोग अपनी बदमाशियोंको ऐसी सूरत दे देते हैं कि आम जनता उसमें इस तरह उलझ जाती है कि पाप बन जाता है पुण्य और बुराई दीखने लगती है भलाई।"

मीनार कुछ सोच रही थी। अचानक वह बोली 'मैं ठीक कह रही हूँ तुमसे कि इस झगड़ेको हम तेरा-मेरा या हिन्दू-मुसलमानका बनाकर ठीक-ठीक नहीं समझ सकते। यह भूल-भुलैयाका रास्ता है और फिर तुम

'तो फिर आपकी ही बात बताओ।' मैंने कहा।

"आपकी बात ?" मीनारने अपने बिखरे विचारोंको बटोरते हुए कहा 'आपकी बात तो बस इतनी ही है कि इनसान यह समझ ले कि सब विश्वासकी चीज़ है, इसलिए जिनका विश्वास पूजामें है वे पूजा करें और जिनका नमाज़में है, वे नमाज़ पढ़ें पर इनसानकी सबसे बड़ी चीज़ इनसानियत है। इनसान पूजा करे या नमाज़ पढ़े, पर यदि उसमें इनसानियत नहीं है तो वह इनसान नहीं हो सकता!"

एक आवेशकी-सी धुनमें मेरे मुँहसे निकल पड़ा 'वाह, यह तो तुमने बड़े पतेकी बात कही।

छोटी मीनार अचानक बोल उठी 'बात तो बड़े पतेकी कही पर मुसीबत तो यह है कि आज इनसान इनसानियतको खोकर धर्मात्मा बननेको बेचैन है।

मैं अब सड़कपर आ गया था। मेरे पैर चल रहे थे और दिमाग़ सोच रहा था—सचमुच यह कितनी अजीब बात है कि इनसान इनसानियतको खोकर धर्मात्मा बननेको बेचैन है।

युक्तप्रान्तकी असेम्बलीमें

आरम्भ

३ नवम्बर १९४७ प्रात ग्यारह बजे। टिक टिक टिक तीन बार मेज बजी और श्रद्धेय श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन भीतर पधारे। सब सदस्योंने खड़े होकर उनका स्वागत किया उन्होंने सिर झुकाकर उसे ग्रहण किया और इस स्वतन्त्र भारतमें यू पी असेम्बलीका पहला अधिवेशन आरम्भ हो गया। केन्द्रीय असेम्बलीमें यह प्रथा रही है कि सभापतिके आनेसे पहले 'मार्शल' सदस्योंकी ओर मुँह करके कहता है – 'दि आनरेबल प्रेसीडेण्ट' और सदस्य खड़े हो जाते हैं। प्रेसीडेण्टके पद-ग्रहण करनेपर खुद मार्शल अपनी कुरसीपर बैठ जाता है और अफसर सोता रहता है। प्रान्तीय असेम्बलीमें सेक्रेटरी ही मेज थपथपाते हैं। केन्द्रीय असेम्बलीमें प्रेसीडेण्टके सिंहासनसे नीचे सेक्रेटरी बैठते हैं पर प्रान्तीय असेम्बलीमें सेक्रेटरी स्पीकरके इतने पास बैठते हैं कि उनकी बात सुन सकें।

एक ही नज़रमें

स्पीकरके सामने हॉलमें बायीं तरफ विरोधी दल यानी आजकल लीग दल सामने जमींदार पार्टी और दायें हाथ सरकारी दल जिसकी पहली सीटपर बैठते हैं महामान्य महामात्य श्री गोविन्दवल्लभ पन्त। यह उस सीटके बिलकुल सामने है, जिसपर आजकल बैठते हैं विरोधी दलके नेता श्री काजी साहब और काजी साहबकी यह सीट वही सीट है, जिसपर बैठनेके बाद १९२४ में पन्तजीकी महान् प्रतिभाको पहली बार देशने पहचाना था। पन्तजी बायेंसे दायें आ गये हैं अर्थात् देशके भाग्यकी उलटी धारा अब सीधी हो गयी है।

यह निश्चय है कि यह घटना यदि किसी डिक्टेटरी शासन हुई होती तो १५ अगस्तकी रात इन लोगोंकी जिन्दगीकी आखिरी रात होती पर हमारा देश प्रजातन्त्री है इसलिए ये भी रहे हैं और जियेंगे। हाँ इस तरह कि हर घड़ी अपनेको मुरदा महसूस करें। उस सेकेण्डकी उस मौतसे यह बरसों लम्बी मौत ज्यादा कड़वी है, इसमें शक नहीं।

जमींदार पार्टीपर नजर डालते ही ऐसा लगता है जैसे ये अपनी मरती जमातके लम्बे साँस हों! अगली असेम्बलीमें बेचारे दूसरे मेम्बरोंके पास बैठकर कभी-कभी यह ख्वाब देखने आया करेंगे। जमींदारियाँ ही खत्म हो जायेंगी तो बूतेके जोरसे वोट लेनेवाले कहाँ रहेंगे?

कांग्रेस दलपर एक नजर डालते ही पहली बात जो मनमें आती है वह यह कि उसमें प्रान्तकी सर्वोत्तम प्रतिभाएँ नहीं सर्वोत्तम स्वतन्त्रता-साधक हैं। अमीनाबाद जेल-निवासकी घड़ियाँ गिनकर मेम्बरोंकी रेवड़ियाँ बाँटी गयी हैं और यह ठीक भी है, पर भविष्यमें ज्यों-ज्यों वैज्ञानिक दृष्टिकोण बढ़ता जायेगा उपयोगिता जोर पकड़ेगी।

अपनी छोटी-सी फाइल लिये देखिए, व चली आ रही हैं श्रीमती विद्यावती राठौर। ८ फरवरी १ ११ को 'लीडर' के विख्यात सम्पादक सर सी. वाई. चिन्तामणिको इन्होंने ६ वोटोंसे हराया था। इन्हें प्रणाम। सर चिन्तामणि, सर सीताराम और सर षण्मुखम् चेट्टीकी हार पिछले चुनावके चमत्कार थे। चमत्कार आन्दोलनको उभार देते हैं पर निर्माण चमत्कारोंसे नहीं गम्भीर योजनाओंसे बल पाता है। यह स्वस्थ दृष्टिकोण अब प्रबल होगा और आशा है अगली असेम्बलीमें यहाँ प्रान्तके सर्वोत्तम कानून-विशारद आयेंगे वहाँ कृषि विशारद पत्रकार, शिक्षाशास्त्री चित्रकार अभिनेता व्यापारी उद्योगी और विभिन्न अन्य धाराओंके प्रतिनिधि भी दिखाई देंगे। इस सुयोजनासे व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओंके कारण अनावश्यक संस्थाएँ नाम जाना और नयी-नयी पार्टियोंका बनना रुकेगा और असेम्बली हमारे प्रान्तकी आत्माका सम्पूर्ण प्रतिनिधित्व करनेमें समर्थ होगी।

इसकी पार्लमेण्टमें भी इस तरहके परीक्षण किये गये हैं और वे बहुत सफल रहे हैं। कश्मीर सरकारमें सर चेट्टी, डॉ. अम्बेडकर, श्री मुकर्जी और श्री मथाईका आना भी इसी दिशाका एक इशारा है।

एक और नज़र

असेम्बलीपर नज़र डालते ही एक खास चीज़पर ध्यान जाता है। यह मौलाना हसरत मोहानीकी तुर्की टोपी है। सीमान्त और दुबलापतला शरीर साधारण कपड़े और धीमी-मरियल-सी आवाज़ यह १९२१ के उस जिलेके बहादुर हैं जिसमें तब ऐसी रोशनी थी कि आँखें चुंधियाती थीं ऐसी दहाड़ें थीं कि कान फटते थे। देखकर दिल तड़फ उठता है। ओह यही वह मोहानी हैं १९२०-२२में जिसकी गर्जनोंसे आगरा जेलकी तंग कोठरियाँ गूँजी। जिसे राष्ट्रपति होना था वह राष्ट्रपतित होकर रह गया !! ठीक है भारी चीज़ जब ऊँचाईपरसे गिरती है तो निकम्मी नहीं टोल-टोल हो जाती है।

मौलाना हसरत मोहानी — लीग दलके सबसे बेचैन मेम्बर जब कैसर-आज़मकी बूढ़ी तलवार-सेना था साईंसाहिब पाकिस्तानका नुमा हुआ नाम !! खुदा इनकी बहकका रहम है !!!

इसी नज़रमें यह एक और मसखरा-सा दुबला छोटे कदका सिर, बिना मूँछका चेहरा हँसनेके हार ऊँची-सी वाणी और लाजम जोश यह हैं महन्त जगन्नाथदास — यू. पी. असेम्बलीमें एक मात्र साधु-सदस्य। साधुओंका काम बताना है कि जब काटना? लीडरोंका मजा भी मार्ग तो सत्यकी समस्या या जनताके मानसका साम चलाकर आगे बढ़नेका तरीका कल्याणी और दिग्विजयनायक मानिए, पर यहाँ महन्त-जीका पथ आपनाना बन रहा है और सिद्ध वो युगोंसे उमड़ रहा दुनियाके साथ चलकर ही वे यहाँतक आये हैं। जब वराह साधु जनक बाग्गमें गिरा के और उस बाड़में वर्षे जो दैवीमें आ रहे हैं और उन्हें दिखानेके

सागर तक पहुँचाकर ही साँस लेगी।

इसी नवरस मलेके दो शालोंपर भी ध्यान जाता है। पहला स्वायत्त शासनके मन्त्री माननीय श्री आत्माराम गोविन्द खेरका तह किया हुआ दायीं बगलसे ही बायें कन्धेपर गया और दूसरा श्री मुलेकरका पैजामी सिपाहीकी चुन्नीकी तरह आड़ीस दोनों कन्धोंको पार कर कमरपर लटकता हुआ।

महिला सदस्याओंमें विशालकाय आकृति और चाल दोनोंमें पण्डित पन्तके समान श्रीमती प्रकाशवती सूद हाउसमें झाँकते ही आँखोंमें आ जाती हैं।

हाउसकी ड्रेसिंग रंगोंका अनुपात है ८५ प्रतिशत सफेद ६ प्रतिशत काला और ९ प्रतिशत शेष।

मन्त्रियोंमें आकृतिके ध्यानसे सबसे विशाल हैं पन्तजी सम्पूर्णानन्दजी और पेरवालीजी तथा सबसे पतले हैं दोरजी और लालबहादुरजी। सबसे नाटे सभासचिव हैं गोविन्द सहायजी और सबसे दुबले जगनप्रसादजी रावत।

सारी असेम्बलीमें सम्भवतः सबसे सुन्दर सदस्य हैं, श्री कमलापति त्रिपाठी – माथेपर गोल बिन्दी बड़े बाल भरा शरीर हँसती चाल गहरे पान-रचे होंठ और नारी-सौन्दर्यसे ओतप्रोत आकृति। देखकर फिर देखने-को जी चाहता है!

'मैं दुनिया-भरमें एक पार्लमेण्ट देखना चाहता हूँ पर यह देरकी बात है। मैं सपना देखनेवाला भी हूँ पर मैं वास्तविकतासे भागा नहीं हूँ। जरूरत है कि हम भारतके खतरोंको और देशकी सीमापर पट्टी नहीं बाँधें। मत भूलें क्योंकि देश शक्तिके भरोसेपर ही जीवित रह सकता है और जनताकी शक्ति ही हमारी शक्ति है।

देशकी नयी हालतपर रोशनी डालते हुए अपनी पैनी शैलीमें मजाक भी टनटनाता रहा। उनके भाषणमें पीड़ा भी थी और हुंकार भी।

नमूना सराहनीय है।

मुसकराता खूबसूरत चेहरा और सधा शरीर ये उठे विरोधीदलके नेता श्री वहीदुल हुसैन नादी। बोले — आनरेबल प्रीमियरने साफ-साफ बातें कही हैं। साफ बातें अच्छी होती हैं इसलिए मैं भी साफ बातें कहूँगा। सुनते ही मुझे लगा कि वातावरणमें गरमी आयेगी पर चतुर नादी वहीं थम गये और बातें न बनकर बातेपर ही रुक गये। उनके सारे भाषणका सार था कि मिस्रसे अब हमारा कोई सम्बन्ध नहीं और हम पूरी तरह देशके प्रति वफादार रहेंगे। नादीके भाषणका भाव था — हमने कोई भूल नहीं की और अब भी हम कोई भूल नहीं करेंगे पर मुझे लगा कि जल्दी या देरमें समयका चक्कर इन्हें पकड़कर ही रहेगा कि तुमने भूल की — भयंकर भूल और उस भूलका कफ्फारा करके ही तुम आगेकी जिन्दगी सही गुजार सकते हो।

अब आया हिन्दीका प्रस्ताव — असेम्बलीका सब काम आइन्दा हिन्दीमें ही हो। लीगके अन्दरमें खलबली मच गयी — जैसे अपने सँपेरेका पिटारा खुलते समय चौंक पड़ते हैं मैं महसूस करता हूँ कि साँप उनकी आस्तीनमें है। हिन्दीके पक्षमें श्री जगमोहन सिंह नेगीका भाषण आर्यसमाजी ढंग उपदेशक टाइपका था। ऐसे भाषण हमारे सदस्य न दें तो ठीक है। श्री कमलापति त्रिपाठीका भाषण एक समझदार भक्तका भाषण था। वैज्ञानिक दृष्टिकोणका एक भावनाकी कमी रह ही गयी। सचाई यह है कि असेम्बलीके कामके प्रति तल्लीनता मुझे बहुत कम मेम्बरोंमें दिखाई दी। वे सोचते हैं — काम करना सरकारी मेम्बरोंका काम है और फिर किसी प्रस्तावको पास करनेकी शक्ति तो हमारे हाथमें है ही।

हिन्दुस्तानीके पक्षमें श्री इश्तहाक लाल खूब जमकर बोले। भाषण अँगरेजीमें था और इसके लिए तैयारी की गयी थी। जब वे गान्धीजी और जवाहरलालजीको बार-बार उद्धृत कर रहे थे मेरे जीमें आया जोरसे पुकार उठूँ — टू लेट माई डियर (प्यारे, अब तुम बहुत लेट हो गये)।

वे यही सम्माननीय व्यक्ति हैं जो हिन्दुस्तानीके नामपर मौन नहीं बैठे थे। मुझे याद है कि एक बार श्री महन्त जगन्नाथदासजीने हाथ जोड़कर इन्हींसे प्रार्थना की थी कि कृपाकर उर्दूमें बोला करें पर ये टससे मस न हुए। आज उन्हें गान्धीजीका गुणगान करते देखकर दया आती है। यह सच है कि लोगियोंने देशको मिटानेमें कोई कसर नहीं रखी पर यह भी सच है कि पश्चिमने उन्हें भी बरबाद कर दिया। आज वे शिकायत करते हैं कि सरकारी अफसरोंमें 'ईमानदारी' नहीं है पर वे यह क्यों नहीं सोचते कि अफसरों को 'बेईमानी' का सबक उन्होंने ही पढ़ाया था।

हिन्दीका प्रस्ताव पास हो गया और मुसलिम लीगी 'वाक आउट' कर गये! उनकी खाली सीटें पड़ी कह रही थीं — 'यह लोग कभी नहीं बदले और जबतक मजबूर न हो जायें बदलेंगे भी नहीं।

हिन्दीका प्रस्ताव पास हो गया। इसका अर्थ हुआ प्रान्तकी आत्मा उसे वापस मिल गयी। आशा करनी चाहिए कि बिहार और मध्यप्रान्त भी शीघ्र ही अपने यहाँ यह कदम उठायेंगे और विधान-परिषद् भी इसी राह आयेगी। प्रान्तोंकी भाषाओंके मनके अपनी-अपनी जगह रहेंगे और हिन्दीका सूत्र उन्हें एकमें बाँधे रहेगा।

क्या हिन्दीकी विजय हिन्दुओंकी विजय है? नहीं यह साम्प्रदायिकता के विरुद्ध राष्ट्रीयताकी स्मरणीय विजय है।

यह मिनिस्टरोंकी गैलरी है — लॉबी। असेम्बली देखने आये हैं तो आइए इसे भी देख लें। यह माननीय अर्थ-मन्त्री पं० श्री कृष्णदत्त पालीवालका कमरा है। पालीवालजी किसी गाँवमें नीमकी छायामें बैठे हों या मिनिस्टरीकी कुरसीपर वे जनताके आदमी हैं इसलिए जनताका हर आदमी उनके पास बेधड़क जाना अपना अधिकार समझता है। हम अपने अधिकारोंका कितना दुरुपयोग करते हैं यह मैंने पालीवालजीके कमरेमें बैठकर देखा। एक देहाती सज्जन पधारे। बोले 'अमुक आदमी आपके

मकानपर ठहरे थे वे गये या हैं ? बेचारेकी बात को सुनकर पालीवाल-जीने कहा 'आप यही पूछनेके लिए यहाँतक आये हैं महाराज ?' घबराकर वे बोले 'नहीं नहीं मैं तो एक और बातके लिए आया हूँ।' पालीवालजीने कहा 'तो वह कहिए न ?' बोले 'जनताकी इच्छा है कि आप कान्फरेन्समें अवश्य पधारें।' पालीवालजीने कहा 'वह कान्फरेन्स तो २९ तारीखको है खुशी और मैं उसमें भाषण भी दे सका।' कार्यकर्ता महाशय चले गये। वे बेचारे बहुत दिन हुए, घरसे चले थे और या ही माननीय मन्त्रीका समय बरबाद कर रहे थे। पालीवालजीने मुझसे कहा 'इस तरहकी बातोंमें इतना समय चला जाता है कि काम-की बातें पीछे पड़ जाती हैं।'

मैंने सोचा कितने बेचारे लोग हैं ये पर दूसरे दिन पालीवालजी एक डेपुटेशनसे मिल रहे थे और मैं बाहर प्रतीक्षामें था। एक एम. एल. ए. साहब आये और कमरेमें घुसने लगे। अर्दलीने कहा 'वे डेपुटेशनसे मिल रहे हैं।' जरा रुककर उन्होंने झांक दिया। पालीवालजीने उन्हें भीतर बुलाया। एक ही मिनिटमें वे लौट आये और अर्दलीसे बोले 'तुम्हारे कहनेसे मैं रुक गया था नहीं तो मैं किवाड़ खोलकर सीधा चला जाया करता हूँ।' जोश आया कह दूँ 'जी साहब आप लाट साहबके सगे साले हैं' पर चुप रहा! कई कार्यकर्त्ताओंको उनसे पाँच मिनिटकी बातके लिए आध घण्टा झक-झक करते देखा। मैंने सोचा हमारे नेताओंको बेगारकी अपेक्षा अपमान अधिक सहना पड़ रहा है।

मिलनेवालोंका जोर पालीवालजीके साथ सबसे ज्यादा माननीय गृह मन्त्री श्रीलालबहादुर शास्त्रीपर रहता है। सारा ओरके उपचारकी मुलाकातियोंका भार ही उनपर नहीं रहता जाननेवाले डेपुटेशनोंके साथ बात-चीतका बोझ भी उन्हें सहना पड़ता है। यह बात-चीत एक ही तरहकी होती है। हम निर्दोष हैं सरकारी अफसरोंने ठीक काम नहीं किया सजा या जुर्माना माफ किया जाये फिर भी वह कभी ऊबते नहीं हैं।

माननीय शिक्षा-मन्त्री श्री सम्पूर्णानन्दजी हमारे प्रान्तीय मन्त्रि मण्डलके सबसे विद्वान् सदस्य हैं। अध्ययनशील और चिन्तनशील। उनके अध्ययन और चिन्तनके सुफल हमारे हिन्दी साहित्यकी समृद्धिके कारण बने हैं और आज हिन्दीको वैभव जो स्वरूप प्राप्त हो रहा है, वे उसका शिलान्यास करनेवालोंमें एक हैं।

पैचवेमनिशाके उत्सके मौकेमें ही इस बार उनके दर्शन करनेका अवसर मिला। बातको सहानुभूतिसे सुनना और उसपर तुरन्त निर्णय देना यह उनका स्वभाव है। जब-जब मैंने उन्हें देखा है, मुझे लगा है कि उनका सारा चरित्र उनकी आकृतिमें साकार है। बन्द होंठ रहस्यके प्रति संयम बड़ी आँखें समयके प्रति एकनिष्ठता और विविध मस्तिष्क ज्ञान-गाम्भीर्य-के प्रतीक-से हैं। उनसे मिलकर खुशी तो बहुत नहीं होती पर बड़ी गहरी मानसिक सन्तुष्टि मिलती है।

काशी विश्वविद्यालयका एक विद्यार्थी जितनी बार अपने घरसे विश्व-विद्यालय गया रास्तेमें ही अपना बिस्तर खो गया — इतना अल्हड़ इतना मस्त। वही आज हमारे प्रान्तमें नशोंका मिनिस्टर है — माननीय श्री गिरधारीलाल। अब भी पहलेसे चुस्त सदा हँसते। बच्चोंकी तरह सूरत और मालियोंकी तरह रसे-मिले। वे हमारे अपने हैं इसलिए यदि उनका कमरा मेरे लिए विश्राम-मन्दिर रहे तो यह स्वाभाविक है। भाई गिरधारी लाल हरिजन जातिके रत्न और प्रान्तीय मन्त्रि-मण्डलकी शोभा ही नहीं मनुष्यताके शृंगार हैं। उनसे मिलकर मुझे हमेशा ही आत्मीयताका ऐसा रस मिला है जो जीवनका बहुमूल्य वरदान ही है। मुझपर इस बार यह प्रभाव पड़ा कि वे अपने कार्यमें रसलीन हैं और पहले एक्साइज मिनिस्टर जहाँ नशोंकी आमदनी बढ़ानेका काम किया करते थे वहाँ वे प्रान्तसे नशों-का मुँह काला करनेमें जुटे हुए हैं।

दूसरे मिनिस्टरोंसे मिलनेका मैं प्रोग्राम बना ही रहा था कि उपद्रवके समाचार सुनकर सहारनपुर लौट आया।

o

मरनेके बाद मुलाक़ात

प्रेमचन्द अपने समयके सबसे बड़े हिन्दी कलाकार थे, पर वे जितने बड़े कलाकार थे उससे भी बड़े मनुष्य थे। उनकी मनुष्यताकी कसौटी भी उनकी कला ही है।

उनके जीवनमें उन्हें समाज कुछ न दे पाया। वह उन्हें देता है जो उसमें झपट ले, पर प्रेमचन्दमें झपट तो दूर, माँग भी मज़बूत न थी। वे खानदानी थे — बिना कुछ पाये भी दिये गये — दिये ही गये और इन बातोंमें कहीं भी उस अप्राप्तिकी कसक या कटुता नहीं है। यही मैं मानता हूँ कि उनकी मनुष्यताकी कसौटी उनकी कला है।

प्रेमचन्दका स्वभाव था — विरोधमें मौन। उनपर आक्षेप हुए — बड़े और छिछले, पर उन्होंने कभी जवाब नहीं दिया। स्वयं अपनी कला रचनावृत्तिके सम्बन्धमें भी अपना मत या दृष्टिकोण हमें दिये बिना ही वे इस दुनियासे चले गये।

उस दिन मैं उनका 'रंगभूमि' उपन्यास पढ़ रहा था कि मनमें आया — बाबूजी एक बार मिल जायें तो उनसे अनेक प्रश्न पूछूँ। स्वयं ही मुझे हँसी आ गयी — अब उनसे मुलाक़ात कहाँ सम्भव है।

तभी हल्की-सी एक पदचाप, चप्पलोंकी एक सरसराहट — कोई आकर मेरी चौकीके पास बैठ गया। आँखें मिलीं कि मैं चौंका; स्वयं बाबूजी ही थे — हाँ प्रेमचन्द!

'ए! बाबूजी आप! आप यहाँ कहाँ? आपके बारेमें तो सुना था कि आप मर गये! और सुना क्या, पर सच ही था। देश-भरके पत्रोंने इसपर श्रद्धांजलियाँ समर्पित की थीं और आपके 'हंस'ने तो अपना 'प्रेमचन्द-स्मृति-

मंद' प्रकाशित किया था पर कहीं भी नहीं आप तो वैसेके वैसे ही हैं। मैक्सिम गोर्की-जैसी वे ही मूँछें वे ही रूसीकी और मनीकी आँखें और वही हँसी। आखिर बात क्या है यह बाबूजी ?" मैंने पूछा।

वे बोले 'बात क्या होगी हमारे महान् जीवन-शास्त्र गीतामें यह लिखा है कि 'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि। तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥' यानी जिस तरह मनुष्य अपने पुराने कपड़े छोड़कर नये वस्त्र लेता है उसी तरह आत्मा पुरानी देह छोड़कर नयी देह ग्रहण कर लेती है।

यह इस देशका दुर्भाग्य है कि अपने जीवन-शास्त्रमें इतनी बड़ी बात लिखी होनेपर भी यहाँ मृत्युको इतना अधिक महत्त्व दिया जाता है और जीवनकी इतनी अधिक उपेक्षा की जाती है।

इधर-उधर क्यों भटकते हो मेरी तरफ ही देखो। मेरे साथी जिन्होंने जीवनमें जिन्होंने यही नहीं कि एक बार भी मेरी ओर प्रमसे नहीं देखा बल्कि हमेशा जो अपने लुगी पगे मुझपर कसे रहे, वे मृत्युकी साधारण घटना होते ही बदल गये और इतने जोरसे रोये कि मेरे आत्मीयोंका विलाप भी फीका पड़ गया।

मैंने कहा बाबूजी बात यह है कि हमारे देशमें मर्मोकी बहुत कमी है और स्वार्थवादियोंकी बहुतायत है। अच्छा यह तो बताइए कि आज-कल आप कहाँ हैं ?"

बोले 'मैं अब यहाँसे दूर अन्तरिक्षमें हूँ। आज इधरसे जा रहा था कि तुम दिखाई दे गए नीचे उतर आया। कहो आजकल क्या पढ़-लिख रहे हो ?'

'आजकल मैं आपका ही साहित्य पढ़ रहा हूँ। पढ़ते-पढ़ते मनमें प्रश्न मनमें उठे हैं। अच्छा ही हुआ कि आप मिल गये। आज्ञा हो तो मैं कुछ पूछूँ ?' मैंने अवसरका सदुपयोग किया।

तुम जानते हो कि मैंने अपनी आलोचनाओंका कभी उत्तर नहीं

अन्तमें एक चान्सके तौरपर जीत जाता है और बढ़िया खिलाड़ी हार जाता है। इम्तहानमें सुस्त लड़का पास हो जाता है, तेजस्वी लड़का फ़ेल। जीवनकी दौड़में धूर्त और तिकड़मी आदमी सफल हो जाते हैं और ईमानदार पिछड़ जाते हैं। अब आप क्या कहेंगे? असलमें जीवनकी सही कसौटी यह है कि हमने अपना काम कितनी लगनसे, ईमानदारी और पूर्णतासे किया। फल तो वाकई एक चान्स है। दूसरे शब्दोंमें ९९ प्रतिशत जीवन है, काम है, कामकी शैली है और एक प्रतिशत उसका फल। अब इस एकको १ और ९९ को एक बताना या समझना क्या अर्थ रखता है? यही मेरे सूरदासके सन्देशकी व्याख्या है।

मैंने कहा "यह तो आपने अजीब बात कही। इस तरह तो जीवन-पर निष्क्रियता छा जायेगी और कोई भी परिश्रम नहीं करेगा।"

शास्त्रीजी तनकर बैठ गये। बोले "यह अजीब बात नहीं है। जीवनका यह महान् दर्शन है। भारतीय विचारधारा शुरूसे ही यह व्यक्त करती है कि मनुष्य तो कर्तव्य करनेके लिए बाध्य है, फलोंकी चिन्ता करना उसका काम नहीं। फल ईश्वरके हाथ है, यानी वह एक चान्स है।

अच्छा एक बातपर और ध्यान दो। कृष्ण महापुरुष हैं और करोड़ों जन उन्हें साक्षात् भगवान् मानते हैं पर उन्होंने महाभारतका जो युद्ध कराया यदि हम उसके परिणामपर नजर डालें तो उन्हें देश और संस्कृतिका संहारक कह सकते हैं पर असलमें ऐसा नहीं है। इसी तरह सूरदास असफल होकर भी महान् है और उसके मुकाबलेमें ईसाई मिल-मालिक जानसेवक सफल होकर भी हीन है। सूरदास मनुष्यको पराजयकी हीनता और निराशासे बचाकर जैसे उसके रोम-रोमसे पुकार रहा है — अरे, पराजित और पिछड़े मनुष्य! उठ अधिकारके लिए युद्ध कर। हार मिले या जीत बस तू युद्ध ही करता चल। युद्ध ही जीवन है, संघर्ष ही मनुष्यता है।"

शास्त्रीकी यह व्याख्या बहुत महत्त्वपूर्ण है, इसमें सन्देह नहीं पर सूरदासके साथ ही भारतका दूसरा महान् पात्र गोदानका नायक होरी भी

व्याधि पतनकी इस परम्परासे यह भय उत्पन्न हो गया है कि हमारे राष्ट्रकी महान् विभूति अध्यात्म कहीं एक शास्त्रीय सिद्धान्त होकर ही न रह जाये जैसे कुछ पुरानी हवेलियोंमें पूर्वजोंका कोष गड़ा रहनेका किस्सा-वहम परिवारके सदस्योंपर छाया रहता है कि है जरूर, पर पता नहीं क्या पता नहीं क्यों?

बाहरी रूपमें देशके दो मुख्य अंग हैं जिनपर राष्ट्रका पतन और उत्थान निर्भर है — जनता और शासन। कुम्भमें दोनोंका पूरा प्रदर्शन था और यों दोनोंके मानसिक विकासके अध्ययनका पूरा अवसर। तो क्या हमारे राष्ट्रके नवीन अभ्युदयकी पुण्य-वेलामें राष्ट्रकी जनता और शासन संस्थामें धीरे-धीरे मानसिक क्रान्ति हो रही है इस अध्ययनके प्रकाशमें हम उसे पहचान सकते हैं? हाँ निश्चित रूपसे।

अभी शताब्दियों तक जिस शासनकी चारदीवारीमें यह राष्ट्र रहा वह राजाधिराजका था बादशाह-आलमका था या गवर्नर जनरलका इस मतलब समान था कि उसकी दृष्टिमें जनताका कोई सम्मान न था — वह उनके उपयोगकी वस्तु थी या उपभोगकी। इस कुम्भमें हमारे इतिहासने पहली बार देखा कि शासन इस दिशामें जनताको सेवाके लिए, उसके सम्मानकी रक्षाके लिए सतर्क है। जनता ही राष्ट्रकी मूल शक्ति है वन्दनीय है, स्वामिनी है और शासनका कार्य उसकी वन्दना है, यह कुम्भमें पहली बार पर प्रत्यक्ष रूपमें हमने देखा और मैं इसे १९५ के कुम्भका महान् उपहार मानता हूँ।

एक स्थानमें शौचके लिए यात्री बैठने लगा तो सिपाहीने उसे मना किया। वह सिपाहीको गालियाँ देने लगा पर सिपाही वहाँसे न हटा और गालियाँ खाता रहा। अन्तमें उसने कहा 'अरे भाई मेरे सिरपर यह लाल पट्टीकी टोपी है इसलिए तू चाहे जितनी गालियाँ दे ले। यह सिर पर न होती तो तुझे हरेक गालीका जवाब मिल जाता।'

उत्तर प्रदेशके मुख्य मन्त्री माननीय श्री गोविन्दवल्लभ पन्त महाकुम्भ में स्नान करनेको पधारे। एक अधिकारीने चाहा कि उनके लिए स्नान कर दिया जाये, पर उन्होंने मना कर दिया और संगम उतर गये। स्नान कर रही जनता उनके चारों ओर हो गयी और कुछने तो उनपर जलमें पानीके छींटे भी मारे। हँसते-मुस्कराते वे भीड़के बीचसे ही निकल गये।

इन दो घटनाओंमें शासनके नये दृष्टिकोणका धरती-आकाश है, पर इस धरतीकी पवित्रता और इस आकाशकी उच्चता इन घटनाओंमें मुखरित है –

मेला-अफसर श्री म. मा. निगम, पुलिस-अफसर श्री श्या. मा. बैजल और श्री सतीशचन्द्र आई० सी० एस० (बादमें उत्तर प्रदेशके विकास-आयुक्त) के साथ मैं प्रधान हेल्थ-अफसर श्री गुप्ताके घर भोजन कर रहा था कि फोन आया – भारतकी विख्यात नारी-सन्त आनन्दमयीने देहरादून जाते समय इलाहाबादमें कुछ देर ठहर – स्नान कर – देहरादून जाना चाहती हैं। आप ऐसी व्यवस्था कर दें कि उन्हें टीका न लगवाना पड़े।

मैंने देखा, ये अफसर परेशान हो रहे हैं और भोजनसे उनका ध्यान उचट गया है। ये सब भी उनके भक्त हैं और उत्सुक हैं कि वे गंगास्नान कर सकें, पर वे टीकेसे कैसे बचें? बहुत-से हल सोचे गये, कानूनका सूक्ष्म अध्ययन हुआ, तो जाना गया कि स्वास्थ्यमें स्थित सर्वोच्च अधिकारी ही इसकी आज्ञा दे सकते हैं। उन्हें टेलीफोनकी कॉल बुक करायी गयी। तभी एक सज्जन बोले – बैजल! तुम उन्हें स्टेशनसे अपनी मोटरमें बैठा लाना और स्नान कराकर उसीमें छोड़ आना। बस कोई नहीं टोकेगा। सब लोग हँस पड़े। श्री बैजलने कहा – 'जी, यह तो मैं पहलेसे ही जानता हूँ कि मेरी मोटरको कोई नहीं रोकेगा, पर हम एक आदमीको इस तरह टीकेसे बचा दें तो फिर जनताको कैसे बाध्य कर सकते हैं कि वह टीका अवश्य लगवाये! मैंने सुना तो मैं स्तब्ध रह गया – ओह, हमारे शासन

मैंने चरा बनकर कहा "क्यों भाई ?" तो बोला 'ताकूत हरेकका अपने हाथ चलना चाहिए और सङ्कल्प पीछे चलना चाहिए।

विद्यावतीने मुझसे कहा आप बार-बार कुम्भके जिस कला-शिल्पकी प्रशंसा करते हैं यह मजदूर उसका पूरा प्रतिनिधि है।

मेरा मन अपनी भावुकतामें डूब गया और मुँहसे निकल पड़ा 'राधे श्याम ! राधेश्याम ! यह उस प्रतिनिधित्वको मेरा प्रणाम ही था !

o

मध्य भारतकी श्रद्धाके फूल

'दादा तो २ तारीखको इन्दौर ही आ रहे हैं फिर क्या करेंगे खण्डवा जाकर ?'

भाई श्रीराम शर्मा 'आधार' ने पूज्य माखनलालजीके दर्शन करनेको खण्डवा जानेका मेरा प्रस्ताव सुनकर मुझसे यह पूछा था मेरे प्रश्नका यह उत्तर ही हो गया। अस्वस्थताके कारण यात्राका बोझ उठ न रहा था और भावनाकी प्रबलताके कारण पैर रुक न रहे थे। कवि 'आधार' ने प्रसन्न मति और अवरोधका समन्वय कर दिया।

अब २ अक्तूबर १९५१ मेरी यात्रा भी थी और मंज़िल भी। मध्य हिन्दी विद्यापीठ इन्दौरमें उस दिन 'माखनलाल अभिनन्दनोत्सव' कर रहा था और दादाने कृपा कर उसमें आना स्वीकार कर लिया था।

भगवान्‌की कृपा भी जब बरसती है तो छावनी छपा फाड़कर। श्री रामनारायण विजयवर्गीयको तार मिला कि दादा १९ को रातमें महूमें विश्राम करेंगे और २ को प्रात इन्दौर आयेंगे। मैं भी महूमें ही था तो यह सोनेमें सुगन्ध!

२ अक्तूबर १९५१ की प्रात महूमें श्री वियोगी हरिका भाषण था। दादा वयस्कोंको मान-महिमा और छोटोंको प्यार प्रतिष्ठा देनेमें सदा मुझे हाथ रहे हैं फिर वे वियोगी हरिजीके भाषणमें क्यों न आते? वे आ गये महीपर लठियोंके सहारे तो मूर्त रामचन्द्र भगवान्‌को एक छटा पूरा देखनेका सौभाग्य मिला कि यहाँकी श्रद्धी बरसी पूनम हो गयी।

हमारे देशके हर नगरमें श्रीमान भी संयोजक रहते हैं पर महूके वैद्य गयाप्रसाद पुरे सचमुच संयोजक हैं। वे जानते हैं योजनाएँ कैसे

कार्यान्वित होती है। प्रातः सात बजे एक उत्फुल्ल उत्सवकी कल्पना आँख-बन्द में ही कर सकते थे। इस योजनाका आरम्भ यों था कि नगरीका एक हरिजन राष्ट्रके यशस्वी हरिजन-सेवकको माला पहनाये। वह माला हाथों सवारि चला था उसने देखा कुरसीपर हैं एक श्याम और गहरीर एक पीर। जाना नहीं पर पीर तो पीर ही है। उस हरजनने पीरको ही अपना आराध्य माना और वह पुष्प माखनलालजीकी ओर बढ़ा। उन्होंने उसे उँगलीके इशारेसे बताया 'उधर'। वह पीरका इशारा पा श्याम की ओर बढ़ा पर श्यामने दोनों हाथोंका सहारा-सा दे पुकारा 'हाँ हाँ ठीक है'। भोला हरिजन अब फिर पीरकी ओर और बस यहीं वह दृश्य कि माखनलालजी उठकर खड़े हो गये और उन्होंने हरिजनके हाथोंसे अपने हाथ सटा मालाको कुछ इस तरह छू लिया जैसे एक पुराने चित्रमें राधा और कृष्ण एक ही बाँसुरीको साधे खड़े हैं। अब चार पैर चार हाथ दो मस्तक और दो हृदय एक ही माला लिये आगे बढ़े और यों वह माला माल्यधारिणी माला वियोगी हरिजीके गले पड़ी। जाने कौन-कौन धन्य हो गया उस दृश्यको देखकर। वियोगी हरिजी बोलने लगे और बाबा स्टेशन आ गये पर हमारा भाग्य कि गाड़ी एक घण्टा लेट। उनके साथ थे प्रोफेसर विलमोरे और अध्यापक जगदीश गुप्त। वे इन दोनों-की भूरि भूरि प्रशंसा करते रहे और दोनोंके गीत उन्होंने हमें सुनवाये। यही तो वे नयी पीढ़ीके दादा हैं। सम्मेलनकी स्थितिसे वे बहुत दुखी थे पर सारे हिन्दी संसारकी तरह विवश। मैंने सोचा — यह विवशता विद्रोहको कब जन्म देगी!

अभी शामको इन्दौरके विशाल गान्धी हॉलमें!

सात्त्विक-सज्जा मंच और जगमगाते खचाखच भरा हॉल स्त्रियाँ भी पुरुष भी। यह महान् साहित्य-साधक पुरुष श्री माखनलालजीका अभिनन्दन-उत्सव है जहाँ मध्य भारतकी जनताके प्रतिनिधि अपनी श्रद्धाके फूल

पहनोंको आ चुके हैं। अभिनन्दनीयकी बगलोंमें बहन श्रीमती कमला बाई किबे सभापतिके स्थानपर और उत्सव आरम्भ।

कन्याओंके कमनीय स्वरोंमें जिसका महान् राष्ट्रगीत वन्दे मातरम् गूँजा कि सब खड़े हो गये इन सबके विचारोंमें विभिन्नता है स्वभावोंमें विभिन्नता है, पर सब समान खड़े हैं यही तो है हमारे राष्ट्रकी एकता जो हमने इतिहासमें पहली बार १५ अगस्त १९४७ को उपार्जित की — एक ध्वज एक राष्ट्रपति एक राष्ट्र-भाषा और एक राष्ट्र-विधान। जब जब मनुष्य इसको विराट्का भागीदार अनुभव करता है तो गौरवकी दीप्तिसे उसकी मस्तक लघुता कैसी प्रसन्न हो उठती है ?

और वर्ष पचास पर उत्फुल्ल आँखें प्रफुल्ल मुख-मुद्रा और उनपर लाल तिलक वाले कब किस दिन हमारे अतीतमें सौन्दर्य-शास्त्रकी इस अभिवृद्धिने जन्म लिया होगा। मालाएँ भी उनके गलेमें पड़ी और उतर कर तकियेपर आ गयीं तो मैंने बिना कहे ही कविसे कह दिया — तुम्हारे रचनाकी कालिमाके लक्षित भावना मुझे स्वीकार पर उसका आर्जव तुम्हें किसीके द्वार भिखारी बना दे, तो मुझे स्वीकार नहीं भले ही यह किसी उपवनकी लता हो या भवनकी लक्ष्मी। इतनी सुन्दर मालाएँ मैंने जीवनमें बहुत कम देखी हैं सचमुच इन्दौर समृद्धिका नगर है।

अभिनन्दन-पत्र पढ़ा गया और तब वे बैठे-बैठे ही बोले। क्या बोले ? प्रश्न उचित है पर इसका समुचित उत्तर सम्भव नहीं। वे बोलने लगे तो लगा कि भाषण आरम्भ हुआ है पर कुछ ही क्षणोंमें सारा वातावरण एक ऐसे प्रवाहमें डूब गया कि मैं उसमें बह गया। बात वचन और प्रवचन भाष्य और भाव्य दोनोंमें ईमानदार हैं। उनकी कविता उनकी बातचीत उनके लेख और उनका भाषण — सबपर उनकी शैलीका निराबाधन छाया रहता है और गूँगेके गुड़की तरह हम स्वयं उसका रस ले तो पाते हैं पर दूसरोंको दे नहीं पाते।

शायद मैं अपने मनोभावोंकी अभिव्यक्ति कुछ यों अधिक कर सकूँ कि

धन्यवादके साथ यह अनुष्ठान पूर्ण कि माखन साहित्यकार-संसद्‌के सभापति कवि डॉक्टर शिवमंगल सिंह 'सुमन' के अधिपतित्वमें कवि सम्मेलन आरम्भ। बलिहारी 'सुमन' के प्राचीन-न्यायुमको कि आरम्भमें ही पढ़ीं पूज्य माखनलालजीने अपनी दो कविताएँ। ओह उनकी 'माँ'! अमर भी और अमर भी भावों और भावों-भरी महान् कृति! सचमुच माखनलालजीकी अपनी जगह कोई जोड़ नहीं और वे थे — जिन्हें यह आ रहा युग नहीं वह आ रहा युग ही ठीक-ठीक पहचानेगा।

कवि-सम्मेलनका वातावरण यों जमकर उतरा था बस उतरा और मैंने सीख लिया कि अनुष्ठान और तमाशा कभी एक साथ न हों। भजना गवैयोंको और जोड़नेका काम सौंप आर्यसमाजके प्रवक्ता कहाँ पहुँचे?

मेरा अभिनन्दन महान् माखनलालके श्रीचरणोंमें और मेरी बधाई उन भावुक तरुणोंको जिनके माध्यमसे मध्य भारतने प्रयाग में फूल चढ़ाये।

o

आपबीती या जगबीती ?

जी हाँ, दुनिया बदल रही है और हमारा देश भी दुनियामें है इसलिए वह भी बदल रहा है।

क्या कहा आपने ? क्या पूछा ? 'क्या यह बदलना, बदलते रहना कुछ अच्छी बात है ?'

जी हाँ, बदलना, बदलते रहना अच्छी बात है, बहुत अच्छी बात है और अच्छी बात ही नहीं, आवश्यक बात है !

'क्यों ?'

आह, अभी आपके प्रश्न समाप्त नहीं हुए ? तो लीजिए यह उत्तर कि बदलना इसलिए आवश्यक है कि आप और मैं इस प्यारी दुनियामें रह सकें। और आप कहीं एक नयी क्यों – किस तरह न जड़ दें, इसलिए इतना और कि यह दुनिया न बदलती होती, पुराने लोग अपनी जगह ज्यों-के-त्यों जमे रहते, तो मैं और आप कहाँ रहते ? हमारे लिए जगह कहाँ होती इस दुनियामें ?

इस बातको यों समझिए कि कली बदलती है, फूलका जन्म होता है, फूल बदलता है फलका जन्म होता है, फल बदलता है बीजका जन्म होता है, बीज बदलता है वृक्षका जन्म होता है और उसपर फिर एक नयी कली फूटती है। तो है न यह अच्छी और आवश्यक बात कि दुनिया बदलती है।

और जो लोग दुनियाकी बात जगमें रहते हैं, तो जगबीती कहनी ही रहती है, पर आज मैं आपको आपबीती सुनाऊँ कि इस बदलती दुनियामें मैं स्वयं कैसे बदलता रहा हूँ।

सोचता है मैं हिन्दूको मार रहा हूँ पर असलमें दोनोंकी लाठी पड़ती रहती है भारतमाताके माथेपर मानो सिर फूटता है भारतमाताका और यह सब उस जादूगरकी डुगडुगीका असर था।

ए? यह क्या? मेरी क़लमकी दोनों जिह्वाओंके बीचमें एक खासी जगह हो गयी है जिसने उन्हें अलग-अलग कर दिया है। एक दिन मैंने यह देखा तो भौंचक रह गया। दोनों जिह्वाएँ ही अलग न हुई थीं उनके शब्द और स्वर भी बदल गये थे और सच कहूँ आपसे क़लम ही बदल गयी थी और इससे भी बड़ा सच यह कि मेरे फेफड़े अलग-अलग हो गये थे मेरा हृदय बँट गया था और यह सब जादूगरकी उसी डुगडुगीका नतीजा था। यों ही कई साल बीत गये। ज्वालामुखियाँ फटती रहीं धड़ाके होते रहे, क़लमकी जिह्वाओंके बीचकी खाई चौड़ी होती रही।

ओह क्या सुहावना मौसम है। नयी महक नयी चहक खुशबू और खूबसूरती बरस पड़ी है। जानते हैं आप यह वसन्त कब शुरू हुई? नहीं जानते? यह हमारे राष्ट्रीय इतिहासके सर्वोत्तम वसन्तका प्रथम है। वह देखिए गान्धीजी अपने चुने हुए साथियोंके साथ नमक सत्याग्रहके लिए डाण्डीकी ओर जा रहे हैं। देशमें चारों ओर एक नयी सिहरन है, नयी दिलचस्पी है, नयी उमंग है, नये इरादे हैं। मार्च-अप्रैल १९१९ लगता है मार्च-अप्रैल १९३० में जाग उठा है। सब कुछ बदल रहा है और लीजिए, इधर भी तो देखिए, मेरी क़लमकी जिह्वाओंके बीचकी खाई एकदम कम हो गयी है और कमाल यह कि अपने-आप और ४ मार्च १९३१ को देश-के नेता गान्धीजी और अँगरेजी हुकूमतके प्रतिनिधि लॉर्ड इरविनमें समझौता हुआ तो मुझे लगा कि मेरी क़लम फिर ज्योंकी-त्यों हो गयी उसकी दोनों जिह्वाएँ मिलकर एक हो गयी हैं।

यह क्या सुना आपने? जादूगरकी डुगडुगी फिर बज उठी और कमाल देखिए जादूगरका कि इस बार डुगडुगी भारतमें नहीं बजी बजी इंगलैण्डमें

समझता था कि निकलना सम्भव न था और बदलती दुनियामें जैसलके जीवनका यह अध्याय एक ऐसे वातावरणमें समाप्त हो रहा था कि न रोना सम्भव था न मुसकराना। कुछ हालत यों थी —

अल्लाह रे उसका हाले-दर्द, अल्लाह रे उसकी खामोशी!
जो दिल में समन्दर रखता हो और आँख में आँसू आ न सके!!

०

नहीं है पर यह आसोमें एक हजार वर्षोंका इतिहास समेटे खड़ा है। क्या नहीं देखा बेचारेने !

मुझे लगा कि मेरी ही तरह यह खाल किला भी आज कुछ सोच रहा है। सहानुभूतिसे मैंने कहा "क्या सोच रहे हो तुमसम्राट् ?"

"सोचूँ क्या कयामतकी भीड़में खुद खो-सा रहा हूँ भाई ?" लाल किलेने कहा।

"हाँ अपने पुराने वैभवको याद कर रहे होगे तुम।" मैंने उसे टटोलनेको उसका मन छू दिया।

"ना ना तुम गलत समझे भाई। यह ठीक है कि मैंने वैभवके दिन देखे हैं। किसी दिन मैं क़ीमती रत्नोंसे जगमग था और आज कोरा पत्थर हूँ पर उस वैभवके पीछे इतना नृशंस रक्तपात था कि वह वैभव मुझे बोझ हो गया था। उसके बाद जो दिन आये उनकी चर्चा ही फ़िज़ूल है। अपने निर्माताओंका नाश ही मैंने नहीं देखा अपना सर्वनाश भी मैंने देखा पर ज़िन्दगीमें अब कुछ दिनोंसे मैं अमन-चैनकी साँस ले रहा हूँ।

"क्या नयी बात है आजकल ?" मैंने उसे फिर बातपर चढ़ाया तो वह बोला "मैं मनुष्योंका निर्माण हूँ और सदा मनुष्योंके ही साथ रहा हूँ पर मैंने सदा मनुष्यको मनुष्यका खून पीनेको तैयार करते ही देखा है। मेरे द्वारसे सदा जो आदेश दिये गये हैं उनका सार है 'मारो काटो और मिटा दो !' इन आदेशोंको सुनते-सुनते मैंने मान लिया था कि इनसान भी एक जंगली खूनी जानवर ही है, पर इधर कुछ दिनसे मेरे दरवाज़ेपर एक नया झण्डा लगा है। उसमें केसरिया सफ़ेद और हरी ये तीन पट्टियाँ हैं और बीचकी पट्टीपर एक चक्रका निशान है।

इस झण्डेकी छायामें अब जो नये सन्देश और आदेश दिये जाते हैं, उनमें प्यार मुहब्बत और नयी रचनाओंकी बातें होती हैं। कहनेका ढंग भी हुंकार और डॉट-डपटका नहीं आ-बैठका होता है। यह सब सुनकर मैं सोचता हूँ कि एक नयी दुनियामें पहुँच गया हूँ और अब इनसान भी जंगल-

आनन्द-विभोर हो गया। एक थीं श्रीमती कृष्णा हाथी सिंह और दूसरी सुश्री पद्मजा नायडू। पहली अपने महान् पिताका एक संस्मरण तो दूसरी अपनी महीमयी माताका। स्वर्गीय पण्डित मोतीलाल नेहरू और श्रीमती सरोजिनी नायडू हमारे राष्ट्रके गौरव-स्तम्भ हो तो हैं!

अपनी पंक्तिमें ये छब-कूप-से दो बालक कौन हैं? ये हैं पण्डित जवाहरलाल नेहरूके बेटे जो राष्ट्रकी जिम्मेदारियोंके बोझसे दबे अपने महान् नानाको कुछ पलोंके लिए अपनेमें उलझा प्रतिदिन देशकी मूक सेवा करते रहते हैं।

और ये राजदूत! गत चार वर्षोंमें भारतने जो अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा प्राप्त की है उसके जीवित प्रमाणपत्र-से और इन्हींके बीच सुरक्षा-परिषद्के निर्णायित पर भारत-द्वारा अमान्य कश्मीर निर्णयके प्रतिनिधि जो डाक्टर ग्राहम शालीनताके घुरकेमें किसी धूर्तताके मजदूत ऊपरसे प्रसन्न पर नेहरू और शेखके अकम्प निश्चयसे भीतर-ही-भीतर प्रकम्पमान!

और इन सबके बीच स्थिर तिरंगा झण्डा मैं सम्मानकी भावनामें भीगा-भीगा-सा उसे देख रहा हूँ और मुझे लगता है वह भी मुझे देख रहा है। भाव-विभोर हो मैंने कहा "क्या सोच रहे हो हमारे महान् राष्ट्रध्वज?"

अपनी इन्द्रधनुषी मुसकानमें उसने कहा "विश्वमें दूर-दूर तकके भारत के राजदूत-भवनोंपर रमे उन तिरंगोंको देख रहा हूँ जो मेरे साथ ही फहरानेवाले हैं और सोच रहा हूँ कि यदि उन सबका एक मानचित्र बनाया जाये तो वह पारिभाषिक रूपमें ही नहीं यथार्थमें भारतकी आत्माका अद्भुत मान-चित्र होगा।"

बैण्डकी मधुर ध्वनि कानोंमें पड़ी तो मैं भावनाके उपवनसे यथार्थके चौराहेपर आ टिका। ओह! इन्हीं कुछ मिनिटोंमें सारा दृश्य बदल गया था।

देव सिंह और पीछे थल सेना नभसेनाओंके प्रधान सेनापति और दो अंग रक्षक।

वे सैनिक टुकड़ियोंके सामने बने खास मंचपर आ खड़े हुए। यह साढ़े आठ बजे हैं। सैनिकोंने उनका सम्मिलित अभिनन्दन किया कि जनताके लाख कण्ठोंमें 'जय-जय-जय' के जीवित स्वर फूट पड़े और मैं देख रहा हूँ कि वे लाखों नर-नारी एक झटकेके साथ खड़े हो गये हैं। सबके स्वर उभर रहे हैं और प्रधान मन्त्री उस अभिनन्दनको अपने प्रतिवन्दनसे ग्रहण कर रहे हैं।

यह साज सेनाका महानेताके प्रति आत्मसमर्पण है या आजकी भाषा में राष्ट्रकी देशभक्ति-द्वारा सैनिक शक्तिका अभिनन्दन!

मैं अब 'बूथ' में हूँ और माइक मेरे सामने है। तीन ओरके शीशोंसे सारा मैदान मुझे साफ़ दिखाई दे रहा है।

परेड तैयार है, प्रधान मन्त्री उसका निरीक्षण कर रहे हैं। मेरी आँखों में दर्शन है, मानसमें चिन्तन, इन दोनोंको भाषामें समेटकर मैंने अपनी कमेण्ट्रीमें कहा — 'एक अद्भुत दृश्य है यहाँ इस समय। इस दृश्यमें एक ओर हैं हमारे प्रधान मन्त्री — १८९७ से १९४७ तकके यशस्वी अतीतमें स्वतन्त्रताकी स्थापनाके लिए किये गये महान् बलिदानोंके प्रतिनिधि और दूसरी ओर हैं हमारे सैनिक — १९४७ से आरम्भ कर आने वाले अनन्त तकके भविष्यमें उस स्थापित स्वतन्त्रताकी रक्षाके लिए होनेवाले बलिदानोंके प्रतिनिधि। इस तरह यह अतीतसे भविष्य तककी एक ऐसी सजीव शृंखला जिसे आँखों देखना और कानों सुनना स्वयं अपनेमें जीवनका एक पवित्र त्यौहार है!

परेडका निरीक्षण कर प्रधान मन्त्री लाल किलेके द्वारपर बढ़ चले जैसे अतीतकी सीढ़ियोंसे चढ़कर वर्तमान ऊपर आ जाता है।

प्यार और आदरकी आँखोंसे प्रधान मन्त्रीने एक बार जनताकी ओर देखा और उसे प्रणाम किया। तभी एक दैवी घटना हुई कि एकदम हवा

लहरा उठी और झण्डा फहराने लगा। मुझे पिछले सालकी वह घटना याद हो आयी कि अपने भाषणमें प्रधान मन्त्रीने ज्यों ही शरणार्थी बन्धुओंके दुखोंका वर्णन किया बहती हवा एकदम रुक गयी थी और लहराता झण्डा सिमटकर दुखिया-सा अपनी बल्लीको लिपट गया था।

अभी प्रधान मन्त्री नयी दिशामें आये 'पर इन दुखोंका यह मतलब नहीं कि हम इनसे हार मान लें। नहीं हम इनसे लड़ेंगे और इन्हें खत्म करके ही चैन लेंगे।'

बस फिर क्या था प्रधान मन्त्रीका उत्साह जैसे सारी प्रकृतिमें भर गया हवा पूरी तेजीसे बह चली और झण्डा बल्लीसे उठकर अपने-आप पूरे वेगमें फहरा उठा था।

प्रकृतिका यह प्रत्यक्ष सन्देश देश-विदेशमें दूर-दूर बैठे रेडियो-श्रोताओंको भेज मेरी कॉमेण्ट्री बन्द हो गयी।

अब फिर एक अद्भुत दृश्य है। ऊपर झण्डा फहरा रहा है। लाल किलेकी लालिमा सारे वातावरणमें छायी हुई है और उसके द्वारपर खड़े हैं धवल वेषधारी गौरवमय श्री जवाहरलाल नेहरू जैसे खूनी दुनियामें फहराती शान्तिपताका!

हमारे प्रधान मन्त्री तन मन और वेष तीनोंमें धवल पर उनके हृदय पटपर जमी गुलाबकी कली लाल जैसे सोते सिंहकी आँखोंमें हुंकारका एक डोरा!

यह दृश्य भी रेडियोके माध्यमसे देशकी जनताको भेंट कर दिया गया। प्रधान मन्त्री तैंतीस मिनिट बोले। यह हिटलर-स्टालिनका नहीं राजर्षि जनकका भाषण था। युद्धके जमानेमें दोस्तीका हाथ बढ़ानेके लिए जिस महान् मानसिक सन्तुलनकी आवश्यकता होती है उसका यह भाषण सम्पूर्ण प्रतिनिधि था। मेरा विश्वास है कि इस भाषणका अभिनन्दन हमारा भावी इतिहास करेगा।

हम इसका पूरा मूल्यांकन कर ही नहीं सकते यदि यह न जान लें कि इस सन्तुलनको खराब करनेके लिए पाकिस्तानका प्रधान मन्त्री १४ अगस्त-का देर रात तक अपने रेडियोपर पागल कुत्तेकी तरह भौंका था। मेरा सोचा राजनीतिज्ञ जवाहरलालके भीतर पिछले वर्षोंसे जो सन्त निरन्तर पनपता रहा है, वही आज बोल रहा है!

अब मेरे पास केवल दो मिनिट थे। पिछले चार वर्षोंका मानसिक अध्ययन थोड़े शब्दोंमें समेटकर मैंने अपनी कॉमेण्ट्री यों समाप्त की

'पहली बार जब हम यहाँ स्वतन्त्रता-समारोह मनानेको इकट्ठे हुए थे लोगोंकी आँखोंमें गहरी उदासी छायी हुई थी दूसरी बार उन आँखोंमें गहरी बेचैनी थी तीसरी बार अनन्त प्रश्न थे और चौथी बार सान्त्वना थी पर इस बार अखण्ड विश्वास है।

आज इस महापर्वके वातावरणमें जीवनके जो स्वर गूँज रहे हैं, उन्हें हम शब्दोंमें कहना चाहें, तो यों कह सकेंगे

महान् देश की पुण्य पताका !
हम अब तुमको फहरायेंगे, बनकर मुक्त वसुधा का !!
जिसने तुमको एक बार भी बुरी दृष्टि से ताका !
हम उसका कुल भस्म करेंगे बनकर दीप-शलाका !!"

जवाहरलालजी आज शरीरसे थके थे – उनका चेहरा सुस्त अवसन्न दीख रहा था। देखकर चोट लगी कि कामके बोझों और मनकी चोटोंसे हम उन्हें थकाये दे रहे हैं।

वे राजदूतोंसे मिले और भीड़की ओर भाव-भरी आँखोंसे देखते रहे। अचानक वे झपटेसे चल पड़े और तेजीसे सीढ़ियाँ लाँघकर बच्चोंकी तरह काफी ऊँचाईसे कूद पड़े। रक्षामन्त्री इस तेजीमें पिछड़ गये और तब उन्हें भी दूसरी ओरसे रस्सीके सहारे उचककर उन तक पहुँचना पड़ा। परिचित

यह इस उत्तरपर खिलखिलाकर हँस पड़े और यों आजका गम्भीर स्वत सभा-समारोह हासकी सरसतामें स्नान कर पूर्ण हुआ।

मैंने आपसे कहा देश निश्चित रूपसे आगे बढ़ रहा है और उसका भविष्य उज्ज्वल है।

o

ऊपरकी बर्थपर

दिल्लीसे इलाहाबाद तकका सफर, हवासे बातें करती तूफान मेल, बाहर अँधेरी रात और भीतर बिजली गुल। मैं सेकेण्ड क्लासमें ऊपरकी बर्थपर, मेरे सामनेकी बर्थपर सामान और नीचे दो बर्थोंपर दो बैल-जोड़ीके तरह। उनकी निगाहमें मैं सो गया हूँ, पर मैं हूँ कि जाग रहा हूँ। वे दोनों रस-भरी बातोंमें निमग्न, जिनमें कभी मेरा ध्यान भटक जाता है और कभी उचट जाता है। सहसा बात एक खास मसलेपर आ टिकी और मेरी पलकार जरा जागकर सजग हो उठी।

'रमेश! चमेली पहले तो बड़ी भगतनी बनती थी, पर अब तो एक-दम परी बनी फिरती है। अब भी वह 'पूजा-पाठ' कुछ करती है या नहीं?

उत्तर मिला, 'पूजा तो अब भी करती है, मगर ठाकुरजीकी नहीं, इंजीनियरकी। सच यह है धर्मा! बड़ी बनावटी औरत है।

'रमेश! तू भी है किस्मतका सिकन्दर, खूब काँटा मारा है यार तूने।

'काँटा-वाँटा क्या, बस तीर बैठ ही गया? पूरा एक साल लगा मेरा। बात यह है, जबसे चमेली विधवा हुई, एक समय वह खाना खाती और दिन-रात राधे-गोविन्दमें लीन रहा करती थी। सच कहता हूँ धर्मा! इसे रास्तेपर लाना मेरा ही काम था।

ऊपरकी बर्थपर मन-ही-मन मैंने कहा, खूब रास्तेपर लाये हैं आप उसे, पर मैं साँस रोके सुनता रहा, क्योंकि मैं चाहता था कि इनके रास्तेपर लानेका उपाय भी सुन सकूँ, तो ठीक रहे। मेरे भाग्यसे धर्माके लिए भी

यह जानना अभी शेष था। तभी उसने पूछा 'आखिर तूने ऐसा क्या मन्त्र मारा कि तू ही उसका राधे-गोविन्द हो गया?'

रमेश सब खुल पड़ा। बोला "शर्मा छह महीने तो मैं उसके पीछे यों ही लगा रहा पर उसकी जिन्दगीमें कहीं हाथ रखनेको जगह ही न मिली। कई बार इशारे किये चटखारे भरे, पर उसके लिए जैसे उनका कोई मतलब ही न था। मैं मस्तीमें भरा उसके घर जाता और निराशामें डूबा लौटता। एक दिन अचानक उम्मीदकी किरण फूट पड़ी। चमेलीने शामको चैतन्य महाप्रभुका जीवन-चरित्र पढ़ना शुरू किया कि उसकी आँखें दुखने आ गयीं। उसने मुझसे कहा कि थोड़ी देर उसकी पुस्तक मैं सुना दिया करूँ। मैं सुनाने लगा। पहले ही दिन एक बात मैंने देखी कि चमेली बड़ी भावुक है और कथामें आये प्रसंग उसके मनपर अपने रसके अनुसार प्रभाव डालते हैं। बस कुंजी मेरे हाथ लग गयी।

मेरे पढ़नेका ढंग इतना अच्छा था कि आँखें ठीक होनेपर भी वह चस्का ही रहा और मैं धीरे-धीरे उसे कथासे कहानीपर ले आया। पहले तो मैंने उसे छाँट-छाँटकर शिक्षाप्रद कहानियाँ ही सुनायीं और तब उसे धीरेसे एक सीढ़ी और उतारकर प्रेमकी कहानियोंपर ले आया। मैं बराबर सोचता रहता था कि कहानियोंमें जब उत्तेजक प्रसंग आते थे तो चमेली विह्वल हो जाती थी।

अब मेरी सफलता निश्चित थी और मैं सिर्फ मौक़ेकी तलाशमें था। एक दिन मैं उसे रातकी कहानी सुना रहा था। उसमें ज्यों ही यह प्रसंग आया कि प्रेमिका प्रेमीकी गोदमें झुक गयी जिस्मानी आग बिजली बन गयी। चौकेसे चुम्बन बेसबरी है। मैंने फौरन हाथ बढ़ाया और स्पर्श सब जानता है स्वप्न मेरी मुट्ठीमें था। मैं चमेलीकी भावुकताको जानता था इसलिए पहले ही झटकेमें मैंने उसे वहाँतक पहुँचा दिया जहाँसे लौटना औरतके लिए मुमकिन नहीं है।"

वर्मा जैसे चहक पड़ा 'बाबाप! पत्थरपर जोंक लगा दी है यार तुमने ?'

रमेशने कहा 'वर्मा इस मामलेमें कहानीसे बढ़कर कोई हथियार ईजाद ही नहीं हुआ। ये कहानी लिखनेवाले कमबख्त ऐसी तसवीरें खींचते हैं कि पढ़कर कलेजा बे-काबू हो जाता है। मैं तो दोस्त अब इन्हें अपना पीर मानने लगा हूँ।

हमारे लेखक और सम्पादक मिलकर हमारी तरुण पीढ़ीकी नसोंमें जो मद्धा सींच रहे हैं उसका तीखापन मैंने आज अनुभव किया। ये जो बुकस्टालोंपर रंगीन और नंगे सौन्दर्यके पन्ने बिखरे पड़े हैं और जो आज हमारे नवयुवकों और नवयुवतियोंके जीवन-प्राण बने हुए हैं असलमें साहित्य न होकर साहित्य-सर्प हैं यह आज जितना साफ़ मैं देख पाया उतना साफ़ पहले कभी न देख पाया था।

पल-भरमें मैं यह सब सोच गया और अपने विचारोंमें दूर तक बहने को ही था कि मेरे कानोंमें वर्माकी आवाज पड़ी 'रमेश कहानी काम की चीज है यह तो तुम्हारे तर्कसे ही जाहिर है पर यार यह गलत है कि कहानीसे बढ़कर कोई चीज ईजाद ही नहीं हुआ।

तुम्हारा मतलब शायद परदेसे है, पर वर्मा हिन्दुस्तानमें अब भी लाखों औरतें ऐसी हैं, जो जिन्दगी-भर लोगोंकी खातिर करनेपर भी परदेपर नहीं चढ़तीं। यह रमेशकी बोली थी।

'परदेपर लानत भेजो जी! मेरा मतलब सिनेमासे है। मेरा यह ख़्याल पक्का है रमेश कि सिनेमासे 'हवी प्रपोज' और कुछ नहीं है। इस बिन देखाभाली और प्यारदुखे बिन सिनेमा — बस चट रोटी पट दाल! अचूक नुस्खा है रमेश!

रमेशकी आवाज नहीं निकली। वह या तो हक्का-बक्का रह गया था और या फिर कुछ सोच रहा था। तब वर्माने पूरी दृढ़तासे कहा 'तुम्हें मेरी

बातका यक़ीन नहीं आया रमेश ? मैं सच कहता हूँ सिनेमा वह देवता है, जो कभी वरदान देनेमें नहीं चूकता। जो आओ तुम्हें हमको गहराईमें उतार और गहराई क्या है तुमको खूब पता है। सिनेमामें और है ही क्या सिवाय उसके जो हमारे दिलमें चल रहा होता है। परदेकी तसवीरें बताती हैं कि शुरूमें यों चलता है और बादमें उसका अन्त यह होता है। बस रास्ता साफ़ हो जाता है और झिझक खुल जाती है और एक ही झटकेमें गाड़ी पंजाब पार! यह क्या इतनी रामबाण है रमेश कि मैं सिनेमाहॉलसे एक बार भी मायूस होकर नहीं लौटा!

रमेश अब भी चुप था। वह शायद सो गया था। क्योंकि करवट लेनेकी सरसराहट मैंने सुनी और तब यह आवाज़— हे मेरे अल्लाह अब कोई नयी मुर्गी मिला। यही शायद उसकी ईश्वर-प्रार्थना थी।

नीचेकी बर्थोंपर वे दोनों सो रहे थे और ऊपर मैं सोच रहा था कि जो सिनेमा दूसरे देशोंमें जीवन-निर्माणका एक मज़बूत साधन है वही हमारे यहाँ जीवनके मन्दिरोंपर विस्फोट बनकर गिर रहा है।

आज भी जब उस रातका ध्यान करता हूँ तो मेरी आँखोंमें आ जाते हैं वे कुछ घण्टोंके साथी — रमेश और शर्मा दोनों एक-दूसरेसे बढ़कर हरामज़ादे! फिर भी मुझपर उनका अहसान है और मानता हूँ कि मैंने उनसे दो क़ीमती सबक़ लिये।

o

लाल मन्दिरकी छायामें

बीसवीं शताब्दीका पूर्वार्द्ध जिन दिनों बीत रहा था, भारतकी राजधानीमें मैंने एक दृश्य देखा और वह दृश्य मेरे लिए एक प्रश्न-चिह्न बन गया। कागज़पर बने प्रश्न-चिह्नोंकी उपेक्षा करना सरल है, पर जो प्रश्न-चिह्न कागज़पर नहीं, कलेजेपर लिखे जाते हैं, वे रात और दिन पुकार-पुकारकर अपना समाधान माँगते रहते हैं। यह माँग इतनी प्रबल और प्रचण्ड होती है कि उसे सुनना ही पड़ता है। भारतकी राजधानीमें बना यह प्रश्न-चिह्न भी कागज़पर नहीं, कलेजेपर है और मैं विवश हूँ कि उसका समाधान खोजूँ। यह खोज, जो मुझे पूरी तृप्ति दे और दूसरोंको भी शायद विचारका निमन्त्रण।

'साहू श्रेयान्सप्रसादजीके सभापतित्वमें अखिल भारतीय दिगम्बर जैन-परिषद्‌का वार्षिक अधिवेशन दिल्लीमें हो रहा है।" यह समाचार पढ़ा, तो मुझे एक गुदगुदी-सी मिली और बाकायदा निमन्त्रण आनेसे पहले ही मैंने उसमें जानेकी मन्त्रणा अपने मनमें कर ली। श्रेयान्सप्रसादजी एक बूढ़े और शीशेवालोंके युगमें भी इतने सहृदय हैं कि उनका धाम एक सुन्दर देवकी आभाकी तरह सुन्दर है। साहू शान्तिप्रसादजीकी मनुष्यताके भी मैं इतने असीम स्वाद पा चुका हूँ कि उनकी याद आते ही मैं भीतर तक मीठा-मीठा हो जाता हूँ। अयोध्याप्रसादजी गोयलीयकी वाणीका निर्माण जोगीकी मस्ती गोरसे हुआ है तो हृदयका पानकी गहरी गौरव-से। न्यायाचार्य और सिद्धान्ताचार्यके आचार्य श्री राजेन्द्रकुमार जैन, उपयोगमूर्ति श्री उग्रसेनरायजी और यह वह, ये ये सब साथी मिलेंगे यहाँ!

ठीक है पुराने और मधुर विचार-बन्धुओंका मिलन जीवनका बड़ा

मुक्त है पर क्या परिपथमें आनेका आशय मेरे लिए इतना ही है कि वहाँ कुछ मिनटोंके विश्रामका अवसर मिलेगा ? मैं भला कैसे इनकार ही कर सकता हूँ ?

परिपथके प्रति मेरे आकर्षणकी नींव बहुत गहरी है। मैंने अपने बचपन रामायणको एक नये रूपमें पढ़ा है। पढ़ा तो कैसे ही है पर उसकी व्याख्या मेरे मनमें एक नये रूपमें प्रस्फुटित हुई है। मुझे लगता है कि आर्य और अनार्य जातियोंकी संस्कृतियोंका संघर्ष बहुत पहलेसे भी चल-रहा था उसमें आर्य जातिकी अन्तिम विजयका श्रेय रामको मिला और उन्होंने ही इस देशमें समाज-व्यवस्थाकी पहली बार पूर्ण स्थापना की। यों समझिए कि इस समाज-व्यवस्थाके शास्त्रीय निर्माता थे मनु और प्रायोगिक निर्माता राम ठीक उसी तरह जैसे समाजवादी समाज-व्यवस्थाके शास्त्रीय निर्माता थे मार्क्स और प्रायोगिक निर्माता लेनिन! इस समाज-व्यवस्थामें हमारे देशका पूर्ण विकास हुआ और वह विश्वका सिरमौर बन गया। आगे कितने वर्षों तक यह व्यवस्था यों ही चलती रही पर जिस दिन सत्त्व-तप-हीन ब्राह्मणने भी अपनेको पूजाका अधिकारी, रक्षा-शक्तिहीन क्षत्रियने भी अपनेको अधिकारका पात्र, कृषि-वाणिज्य शक्तिहीन वैश्यने भी अपनेको सम्पत्ति होनेके लिए प्रमाणित और इन तीनोंने सेवा-शक्ति-सम्पन्न श्रमकारको एक महापापीके स्थानमें अधिकारहीन बना माननेकी घोषणा की उसी दिन यह समाज-व्यवस्था खण्डित हो गयी।

यह समाज-व्यवस्था खण्डित हो गयी पर मरी नहीं — उसमें जीवनके कुछ तत्त्व ही संजीवन गुण थे — हाँ उसकी दरारोंमें वहाँ जीवन धाराका प्रवाह रुक गया था, दुर्गन्ध बढ़ती रही। इसी दुर्गन्धका फल वह महामारी थी जिसे हम महाभारत कहते हैं। इसने इस विघटनको अपने कार्यकी परिणति नहीं अपने व्यक्तित्वकी महाप्रतिष्ठा एक बार नष्ट किया। इस संघर्षसे जीवनकी नयी कोंपलें नहीं फूटीं हाँ पुराने पत्तोंका झड़ना सीमा पर गया पर यह कोई स्थायी काम तो न था! फिर

भी कोई ढाई हजार वर्षों तक इसका प्रभाव रहा और तब फिर दरारोंकी दुर्गन्ध भयानक हो उठी।

भारत भूमिकी उर्वरा धरितीकी शाश्वत धर्म। उसने एक साथ दो महापुरुषोंको जन्म दिया। इनमें पहला बुद्ध दूसरा महावीर। दोनोंने इस दुर्गन्धके विरुद्ध विद्रोहकी घोषणा की पर दोनोंकी दिशा एक होकर भी शैली भिन्न — बुद्ध घोर क्रान्तिकारी महावीर समन्वयवादी।

बुद्धने कहा 'हिंसा वर्जनीय है।

कहा गया कि हिंसा तो यज्ञोंका एक आवश्यक अंग है।

बुद्धने कहा मैं यज्ञोंको नहीं मानता।

कहा गया कि यज्ञोंका विधान तो वेदोंमें है।

बुद्धने कहा 'मैं वेदोंको नहीं मानता।

कहा गया कि वेद तो ईश्वरकी वाणी है।

बुद्धने कहा 'मैं तुम्हारे ईश्वरको भी नहीं मानता।

यह एक क्रान्तिकारीका दृष्टिकोण है, जिसका स्वरूप यह है कि तुम यहाँसे हटो यहाँ अब मैं ही रहूँगा — उठो भागो।

महावीर यहाँतक नहीं गये। उन्होंने शायद द्रव्यकी विचार-दिशाको समझ लिया और अनेकान्तवादके रूपमें एक समन्वयकी धारा बहायी। उसकी व्याख्या-दिशाका स्वरूप यह है 'हाँ हाँ वहाँ खड़े होकर तुम देख रहे हो जीवनका वही रूप दिखाई देता है जो तुम कह रहे हो पर देखने को एकमात्र जगह वही तो नहीं है जहाँ तुम खड़े हो। जो आओ मेरे पास और यहाँसे देखो कि तुम जो यहाँसे देख रहे हो जीवनका वही सत्य नहीं है।

दोनों महापुरुषोंमें मतभेद नहीं है, दोनोंके कार्योंने एक-दूसरेको बल ही दिया। हाँ यह ठीक है कि बुद्धको बहुत सफलता मिली — क्रान्ति हमेशा तीव्रगामी होती है और सुधार मन्दगामी पर यह भी तो सत्य है कि बुद्धका कार्य भारतसे उनके पीछे-पीछे ही इस तरह चला गया जैसे

हिटलर और मुसोलिनीका काम उनके पीछे-पीछे चला गया और महावीर का काम उनके पीछे भी काम करता रहा जैसे कमालपाशाका काम उनके बाद भी।

संक्षेपमें बुद्ध और महावीर, हमारी समाज-व्यवस्थाके प्रथम विद्रोही और २६ जनवरी १९५ को जिस नयी समाज-व्यवस्थाकी वैधानिक घोषणा हुई उसके आदि प्रवर्तक। नवीन समाज-व्यवस्था जिसके महान् शिल्पी हैं महात्मा गान्धी सही अर्थोंमें राष्ट्रपिता जो क्रान्तिकारी दृष्टि-कोणमें बुद्धके और कार्य-विधानमें महावीरके निकट हैं।

आजका जैन धर्म महावीरकी धरोहर है और जैन समाज इस धरोहरका मूल संरक्षक — मूल इसलिए कि समाजकी जिन कुव्यवस्थाओंके विरुद्ध महावीरने युद्ध-घोषणा की थी उनसे पूरी तरह विरत हुआ। संक्षेपमें वे कुव्यवस्थाएँ हैं कट्टरता और विषमता। दिगम्बर जैन-परिषद्की घोषणा इन दोनोंके विरुद्ध जंगकी है और नवीन समाज-व्यवस्थाके एक मामूली स्वयंसेवकके रूपमें यही परिषद्से मेरा रिश्ता है।

एक आकर्षण और भी — युगने महावीरकी धरोहरके मूल संरक्षक इस समाजको आज एक ठेठ कसौटीपर रख दिया है और वह इस तरह कि भारतके नये विधानने जाति लिंग स्थिति और धर्मसे ऊपर उठ मनुष्यमात्रकी समानता — समान सामाजिक अधिकारों — की घोषणा की है। महावीर स्वामीकी अमुक्त आत्मा इस घोषणाका अनुभव कर सन्तुष्ट हुई होगी और उसने सोचा होगा कि ओह, मेरी भावना ढाई हजार वर्षों बाद आज फलवती हुई। जैन समाज महावीरको भगवान् कहकर पूजता है। उसके लिए शोभा तो यह होती कि यह घोषणा उसके ही प्रयत्नोंके फलसे प्रस्तुत हो पर यह नहीं तो यह तो होना ही चाहिए कि उसे इससे एक नये गौरवका अनुभव हो।

क्या यह हो रहा है? आज प्रश्नको भी हिर्दहिएड है, यह कहते

कि था। जैन समाजके प्रमुख मुनि चारित्र-चक्रवर्ती आचार्य श्री पूज्य शान्तिसागरजी महाराज तो वर्षोंसे अन्नका त्याग किये हुए हैं कि हरिजनोंको जैन मन्दिरोंके भीतर प्रवेशका अधिकार न मिले। जैन समाजमें उनके प्रति श्रद्धा है और उनके अन्न-त्यागसे पीड़ा भी। फलस्वरूप जगह-जगह हरिजन-मन्दिर-प्रवेश-विधिका विरोध हुआ है। जैन समाजके सर्वोत्तम सन्त पूज्य प्रवर श्री गणेशप्रसादजी वर्णीने गौरवकी बात है कि मन्दिर प्रवेश-विधिका समर्थन किया है और दूसरे अनेक विद्वानोंने भी फिर भी विरोध बलवत्तर रहा है और परिषद्‌को इसपर अपना मत देना था। परिषद्‌के मुजफ्फरनगर अधिवेशनमें गत वर्ष इस सम्बन्धमें जो प्रस्ताव पास हुआ था वह प्रभावकारी है। उसमें कहा गया है कि सरकार इस सम्बन्धमें जो कार्रवाई करे, उसमें जैन समाजके नेताओंकी भी सलाह ले क्योंकि जैन मन्दिरोंकी पूजाविधि अपने ढंगकी है।

मेरी जिज्ञासा थी कि परिषद्‌का प्रस्ताव इस वर्ष किस सीमा तक आगे जाता है, क्योंकि यह प्रस्ताव मेरी सम्मतिमें जैन समाजके जागृत मानसका मापदण्ड होगा। इस दृष्टिसे जब मैं दिल्लीके परिषद्-अधिवेशनमें गया तो मैं एक सत्संगमें ही नहीं गया जहाँ मेरे पुराने विचार-बन्धु मुझे मिलेंगे सामाजिक प्रगतिकी एक अध्ययन-शालामें भी गया जहाँ मैं देख सकूँ कि हम किधर-कितना बढ़ रहे हैं।

मण्डप शानदार था बैठने-बैठानेकी व्यवस्था सुन्दर थी। स्वागताध्यक्ष और अध्यक्ष दोनोंके भाषण छपे हुए थे। उनमें अवलोकन सुलझा हुआ था निवेदन नपा-तुला – भाषण थे सशक्त न थे पर स्वस्थ थे। उपस्थिति अच्छी थी। माननीय श्री श्रीप्रकाशजीने अधिवेशनका उद्घाटन किया था और अपने भाषणमें व्यापार-वाणिज्यके साथ नैतिकताके समन्वयकी सुन्दर बात कही थी। भाषणमें सरलता थी स्पष्टता थी पाण्डित्य न थी जो मानसको छिला देती है। श्रीप्रकाशजी महान् विचारक पिताके साधु पुत्र हैं। वे उन पवित्र पुरुषोंमें हैं, जो कभी-कभी ही राजनीतिमें दिखाई देते

हैं। आजकल जिन कलाओंमें मनुष्य पद पाते हैं वे उनसे सर्वथा शून्य होकर भी आज जो केन्द्रीय मन्त्रि-मण्डलके सदस्य हैं यह उनकी विलक्षण मनीषाका ही फल है। परिषद्ने उन्हें उद्घाटक चुनकर अपनी मानसिक स्वस्थताका जो प्रमाण-पत्र दिया उसके लिए वह बधाईकी पात्र है।

यहीं दिखाई दिये मध्य भारतके उद्योग-व्यापार मन्त्री माननीय श्री श्यामसुन्दरजी पाटीदार। आकृतिमें सीधे तो प्रकृतिसे सादे। बातचीत हुई, तो जाना कि सरस भी सहृदय भी। मैंने पत्रकारकी पैनी आँखोंसे उन्हें देखा – दूर-दूर भी कहीं राज्यके मन्त्री होनेका दर्प या दम्भ मुझे दिखाई न दिया। वे सबके बीचमें इस तरह थे जैसे वे जो कुछ जितने कुछ यहाँ हैं उससे बाहर और कुछ नहीं। उनसे मिलना भले ही मुश्किल हो पर मिलकर उन्हें पा लेना मुझे आसान लगा। सचाई यह है कि वे श्रेष्ठ मनुष्य हैं और उनसे मिलना मानवताके एक नम्र सेवकको उत्साह देना है।

जयप्रकाश रौकाका नाम बहुत बार सुना था पर सुननेमें जो बीज था वह मिलनेमें वट-वृक्ष हो गया जिसकी छायामें शीतलता और विश्राम दोनों मिलते हैं। जीवनमें सात्त्विकता विचारोंमें स्पष्टता और कार्योंमें कर्मठता यह त्रिवेणी ही श्री रौका हैं। रौकाजीमें एक ऐसा बाँकपन है कि उनसे मिलकर मनुष्य अपनी आशा-कल्पनाके सौन्दर्यका प्रतिबिम्ब तुरन्त पा जाता है।

एक और आदमीका मुझपर असर पड़ा। वे बोलते कम थे देखते ज्यादा थे। मैंने अनुभव किया कि व्यवस्थाके हर कोनेपर उनकी आँख थी। ये स्वागत-मन्त्री श्री नर्मदादास थे। स्वागत-समितिकी व्यवस्था सुन्दर थी सुसंगठित थी पर यह कोई खास बात न थी क्योंकि स्वागताध्यक्ष श्री राजेन्द्रकुमार 'डायरेक्शन' में ही नहीं 'ऐक्शन' में भी पटु हैं। वे काम करना भी जानते हैं काम कराना भी!

पहले दिनका अधिवेशन बहुत सफल रहा।

दूसरे दिन विषय-निर्वाचिनीमें जो प्रश्न लोगोंको तंग कर रहा था वह यह कि कुछ लोग जैन धर्मको स्वतन्त्र धर्म मानते हुए भी जैन समाज और हिन्दू समाजकी एकताका समर्थन करना चाहते थे पर कुछ लोगोंको इससे यह भय था कि इस दशामें हिन्दू कोड बिल और हरिजन-मन्दिर प्रवेश आदिके सुधारक कानून हमपर लागू होंगे। संक्षेपमें उनके मनका भय यह था कि आगे चलकर जैनियोंका कोई अस्तित्व ही न रहेगा। श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीयने इस भयपर आक्रमण किया और लोग उनकी भाषण-कलाके प्रबल प्रवाहमें बह गये पर धीरे-धीरे भयने फिर सिर उठाया। श्री ऋषभदासजी रांकाके भाषणने दोनों समाजोंकी एकताके प्रश्न पर नवयुगका प्रकाश डाला। उन्होंने कहा था कि बम्बईके हरिजन-मन्दिर प्रवेश कानूनसे जैनियोंके मुक्त होनेका फल यह हुआ है कि उधर जैनी एक बहिष्कृत जाति हो गयी है, जिससे जैनियोंके लिए सम्मानपूर्वक रहना दुर्भर हो गया है।

इस भाषणका प्रभाव पड़ा और एकताका प्रस्ताव नये रूपमें बन सका। हरिजनोंके मन्दिर-प्रवेशपर जो प्रस्ताव बना वह स्पष्ट था फिर भी रचनात्मक था क्रान्तिकारी था।

इधर ये प्रस्ताव पास हो रहे थे उधर दिगम्बर मुनि महाराज श्री नेमि-सागरजीके तपोवनमें जैन समाजको इस 'महानाश'से बचानेकी तैयारियाँ हो रही थीं। दिन-भर यहाँ चर्चा रही जोड़-तोड़ चलते रहे। शाम तक सूचना मिली कि वहाँ यह तय पाया है कि आज परिषद्का अधिवेशन न होने दिया जाये। परिषद्का अधिवेशन आरम्भ हुआ तो पथावत उपस्थिति थी। मुझसे गोयलीयजीने कहा 'आज हमलेकी पूरी तैयारी है।' मैंने भी दो-चारसे बात की इधर-उधर सूँघा तो खतरा दिखाई दिया।

मैंने सभापति श्री साहू श्रेयान्सप्रसादजीसे कहा "हरिजन-प्रस्ताव

जिम रूपमें है, उसपर आज भयंकर झमेला होगा यह निश्चित है, इस लिए उस प्रस्तावको आज या अभी न लायें तो कैसा है ?

साहू श्री श्रेयांसप्रसादजीने जो उत्तर दिया वह हमारे राष्ट्रके सुधारकों-के लिए डायरीमें नहीं फ्रेमकर लिखने लायक है। अपनी शान्त मुद्रामें वे बोले प्रभाकरजी ! हम यह प्रस्ताव पास न करा सकें तो फिर परिषद् चौमेसे ही क्या लाभ है ?

उत्तर सुनते ही मेरा मन आनन्दसे भर गया और साहूजीके सामने मेरा सिर झुक गया। लखनऊके परिषद्-अधिवेशनमें मैंने अनुभव किया था कि साहू शान्तिप्रसादजीके रोम-रोममें विशाल जैन संघका राष्ट्रीय स्वप्न समाया हुआ है और आज उनके बड़े भाईके मनमें छाया हुआ मैंने उसका स्वरूप देखा। मुझे लगा कि मैं इस समय कश्मीरकी किसी घाटीमें विचर रहा हूँ।

श्री परमेष्ठीदास जैनने प्रस्ताव पेश किया। प्रस्ताव पढ़कर उन्होंने जैन समकी विशालतापर भाषण आरम्भ किया ही था कि आवाजें आने लगीं और कुछ ही पलोंमें ये आवाजें एक सम्मिलित कोलाहलमें बदल गयीं। भाषण देना इस दशामें किसीके लिए भी असम्भव था। तब एक नवयुवक स्टेजपर आये और बोलने लगे। कोलाहल नाटकीय ढंगसे शान्त हो गया। उन्होंने अपने जानदार और वाणीके भाषणमें प्रस्तावका विरोध किया और समाजकी इच्छा यह बतायी कि यह प्रस्ताव ठीक नहीं है।

लोग शान्त हो गये पर फिर हल्ला मचा कि प्रस्ताव वापस लो परमेष्ठीदासको निकाल दो और आगे क्या-क्या। इसके बाद तो लोग खड़े हो गये और भाषण-वेदीके चारों ओर कुछ 'ट्रेन्ड' मनुष्य आ जुटे। अब कोलाहल अपशब्दोंके सागरमें डूब गया। कुछ ही क्षणमें ये अपशब्द तय हो गये और वे लोग वेदीके ऊपर चढ़ आये।

सबके चेहरोंपर भयंकर क्रोध था सबकी मुद्राओंमें हिंसा थी सबकी वाणी क्रूर थी और सबमें हृदय ही नहीं हाथ भी मचलते रहे थे। मैंने

छोना जाने आज क्या होनेवाला है।

सभापतिने सहायता कर प्रस्तावको स्थगित कर दिया। अब एक नया रूप आया और गरमी बेहद बढ़ गयी। प्रस्तावको स्थगित नहीं करना थो। यह उन लोगोंका नारा था और वे अब और भी ऊपर चढ़ गये। साहू श्रेयांसप्रसाद अब इन लोगोंसे घिरे हुए थे। एक गाय यदि सैकड़ों भेड़ियोंके झुण्डमें घिर जाये तो आप जानते हैं कैसा दृश्य होता है? यदि हाँ तो वहाँ वही दृश्य था! सचमुच एक अद्भुत दृश्य था कि एक तरफ सैकड़ों खूंखार चेहरे और दूसरी तरफ एक शान्त आकृति।

मैंने अपने-आपसे कहा — आश्चर्य कितना बड़ा व्यंग्य है कि ये खूंखार चेहरे भगवान् महावीरके धर्मकी रक्षाका दावा करते हैं और इस शान्त मनुष्यको उस धर्मका विरोधी बताते हैं। तभी मेरे मनमें एक भयंकर कल्पना जागी कि कौन कहता है गोडसे गान्धीको मारकर फाँसी चढ़ गया' — ये सब गोडसे ही तो हैं।

बहुतोंको मेरी कल्पना कड़वी लगेगी पर जहाँ हम अपना मत विचारसे नहीं ताकतसे मनवानेकी कोशिश करते हैं वहीं तो गोडसे होता है। ये लोग थोड़ी देर प्रतीक्षा करके प्रस्तावके विरोधमें राय दे और उसे फेल कर देते यह सीधा मार्ग था पर इन्हें मतपर नहीं ताकत पर भरोसा था और यहीं ये सब गोडसे थे।

मीटिंग स्थगित कर दी गयी। यह अच्छा ही हुआ नहीं तो जो कुछ होनेवाला था वह सारे जैन समाजको चुल्लू-भर पानीमें डुबा देता! मुझे सार्वजनिक जीवनमें काम करते बरसों हो गये पर मैंने ऐसा कुरूप दृश्य पहले कभी देखा था यह मुझे याद नहीं पड़ता।

रातमें परिषद्के नेता मिले। मुझे खुशी हुई कि वे स्थिर थे दृढ़ थे। दूसरे दिन दिनमें दो बजे परिषद्का अधिवेशन हुआ। आज [illegible] [illegible] व्यवस्था थी। हर बल्ली और रस्सेपर स्वयंसेवक था।

तनमुखराम एक कामचरती है और सचमुच कार्यकर्ता बहुत बड़ी चीज होती है यह बात स्पष्ट देगा।

प्रस्ताव पास हो गया और इस तरह परिषद्ने घोषणा की प्रतिक्रियावादी कितने ही स्थाने लें कितने ही पैर पीछे घुमाएँ प्रगति अमर है और निश्चित रूपसे वह अपना कार्य करेगी।

०

दिल्ली-यात्राकी स्मृतियाँ

'आपका देहली चलना निहायत जरूरी है पण्डितजी !'

देशबन्धुके प्रतिष्ठित राष्ट्र-कर्मी मास्टर काशीरामजीका अनुरोध सुनते ही मैं दिल्ली चलनेको तैयार हो गया। वे देशबन्धु तहसीलकी राजनैतिक कान्फ्रेंसके लिए नेताओंको निमन्त्रण देने दिल्ली जा रहे थे। महात्माजीके पुन-आगमन और असेम्बलीकी बैठकके कारण दिल्ली इस समय राष्ट्रका पवित्र तीर्थ हो रहा है, मैं इस तीर्थके अवगाहनसे क्यों वंचित रहूँ ?

यमुनाका पुल पार करते ही लाल किलेपर दृष्टि पड़ी। वह आज भी खड़ा-खड़ा चौराहेके सिपाहीकी तरह मुगल साम्राज्यके उस महान् वैभवकी ओर संकेत करता रहता है। कितना वैभवशाली था वह साम्राज्य और कितना शक्ति-सम्पन्न पर विलासिता और जनताकी उपेक्षासे वह मिट्टीमें मिल गया और उसके उत्तराधिकारी आज जाकर ख्वाजा हसन निजामीसे पूछो ठेले चला-चलाकर पेट पाल रहे हैं !

आगे बढ़कर स्टेशन आया। उतरे बाहर आये। सामानके लिए एक कुली किया पर तीन-चार कुली झगड़ पड़े। सभी अपना नम्बर बता रहे थे। बात यहाँतक बढ़ी कि मध्यस्थ बनना पड़ा। मास्टरजीने कहा 'हमने यह कुली किया है अगर इसका नम्बर नहीं है तो तुम इसकी शिकायत कर देना पर हमारा वक्त क्यों बरबाद कर रहे हो भाई ! कुली उनसे भी समझनेको यहाँतक कि हाथा-पाई करनेको तैयार हो गये। मैंने इधर उधर देखा कोई सिपाही वहाँ नहीं था।

सामने साइनबोर्डपर नजर गयी जिसमें 'मुसाफिरोंके सामने न जाना' लिखा था। अँगरेजी ठीक और यहू सड़ी पर हिन्दी ही एक अनाथ मालूम है जिसपर होनेवाले अत्याचारोंका प्रतिवाद शायद निषिद्ध है।

खैर, सामान लेकर आगे चले। थोड़ी दूर जाकर देखा एक कुलीकी बाँहमें सिपाही महाशय अपने एक मित्रके कन्धेपर हाथ रख गप-शप कर रहे हैं। कर्तव्यपालनका यह कितना सुन्दर उदाहरण था। मैंने कहा 'मास्टरजी एम पब्लिक सर्वेन्ट भारतके अलावा और किस देशमें मिल सकते हैं?

दूसरे दिन विभिन्न नेताओंके दर्शन किये। कैनिंग स्ट्रीटकी सरकारी कोठियाँ आजकल 'काँग्रेस-हाउस' हो रही हैं। सेठ गोविन्ददासजीकी बाहर खड़ी मोटरपर तिरंगा झण्डा फहरा रहा था। २५ न० कोठीमें पालीवालजीके दर्शन किये। वे बाहरसे जितने ऊबड़-खाबड़ हैं भीतरसे उतने ही सुन्दर। जितने कड़वे हैं उतने ही सरस। एक शब्दमें युक्तप्रान्त-का वह मजबूत सिपाही है।

सभी लोग असेम्बली-हाउस जानेकी तैयारी कर रहे थे। सभापतिके चुनावकी व्यस्तता सभीके चेहरोंपर थी पर श्री प० गोविन्दवल्लभजी पन्त इस समय भी बेफिक्रीसे बैठे हजामत बना रहे थे जैसे उन्हें कोई फिक्र ही नहीं।

असेम्बली पहुँचे नेता लोग धीरे-धीरे आ रहे थे। आज नयी दिल्ली — वायसरायके घर — में खादीकी बहार देखने लायक थी। कई तिरंगे झण्डे जिन्हें मुसलिम पत्र वर्षोंसे भगीरथ-प्रयत्न किया गया था मोटरोंपर फहरा रहे थे। ऊपर असेम्बली-हॉलपर यूनियन जैक फहरा रहा था जो सम्भवतः इन छोटे-मोटे झण्डोंको चुनौती दे रहा था 'इन किरायेकी मोटरोंपर चढ़कर क्या इतरा रहे हो? यहाँ आओ तो मैं समझूँ। इन

उन्होंने इस चुनौतीका जो उत्तर दिया वह लिखनेकी नहीं भावुकोंके अनुभव करनेकी चीज है।

सभापतिके चुनावमें कांग्रेस हार गयी। सभी कांग्रेसी खिन्न थे पर पण्डितजीकी मुख-मुद्रापर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं था। वे वास्तवमें एक राजनीतिक नेता हैं और राजनीतिको वे खिलाड़ीकी आँखसे देखते हैं। पं० मोतीलालजी नेहरूकी यादसे मेरी पलकें भीग गयीं। काश आज वह महापुरुष होता तो क्या पराजयकी ये घड़ियाँ देखनी पड़तीं?

हिन्दुस्तानमें सम्राट्के उस प्रतिनिधिको भी देखनेका अवसर मिला। लॉर्ड लिनलिथगो बूढ़े हैं पर धारीदार स्याह कोटमें खूब फब रहे थे। चेहरे पर बुढ़ापा था पर शरीरमें जवानीकी चुस्ती। मुखमें कौन गुण छुपा है? मुझे ग्रामीण भारतीयके नाते उन्हें देखकर पुराने लोक-अभिनेताओंकी याद हो आयी।

आजकल रिस्कीम जापानी मालकी एक नुमाइश हो रही थी। हम लोग भी उसे देखने गये कोई टिकिट नहीं था। विविध प्रकारका जापानी माल सजा हुआ था। चमक-दमक नम्बर एक और दाम सस्ता। चारों ओर विविध देशोंके झण्डे लटक रहे थे। उनमें एक झण्डा (जो सम्भवतः इटलीका था) भारतके झण्डेसे मिलता-जुलता था। मैंने वहाँके प्रबन्धक एक जापानीसे पूछा 'ये झण्डे विविध देशोंके हैं या जापानके ही विविध सूबोंके?' हँसकर उसने कहा 'दीज आर फ्लैग्स् ऑफ ऑल दोज कण्ट्रीज विथ विच वि हैव आवर ट्रेड ऐक्सेप्ट दीज विच आर स्लेव कण्ट्रीज।' अर्थात् यहाँ उन सब देशोंके झण्डे हैं जिनसे हमारा व्यापार है और जो गुलाम नहीं हैं।

इस जापानीकी हँसीमें कितनी भर्त्सना थी।

शर्मसे मेरी आँखें नीचे झुक गयीं। भारतके मस्तकसे दासताका यह कलंक कब धुलेगा? हम कितने ही सजें धजें और शृंगार करें, पर जब

तक हमारे मस्तकसे दासताके कलंककी कालिमा नहीं पुछती सब बेकार है और हमारा गँवार हमारे उपहासका ही कारण है।

अँगरेजी सूट-बूटमें कोई भारतीय ईसाई कहीं अँगरेज हुआ है? गुलामीसे बाहर निकल अपना तरीका। इस गुलामीके समर्थनमें एक सम्पादकीय नोट था! वाह रे भगवान् व्यासके उत्तराधिकारियो!

'हिन्दुस्तान टाइम्स'का दफ्तर भी देखा। भाई देवदासजी गान्धीसे थोड़ी-सी बातें हुईं। उनकी सौम्य मूर्ति सदा याद रखनेकी चीज है। इस दफ्तरमें यहाँ हम-जैसे हजारों सूटमैन्से दिन भरमें मिलने आते हैं कोई किसीकी बात पूछनेवाला नहीं था। शहरीपनके वातावरणमें यह शिकायत की बात भी नहीं पर दो सम्पादकोंके बीचमें रखी हुई बिजलीकी अँगीठी और कर्मचारियोंके सूट-बूट देखकर हमारे मास्टरजी बहुत भड़के 'हमारे नेता अगर अपने अधीन कर्मचारियोंमें ही खादी वालीका प्रचार नहीं कर सकते तो उन्हें अपने पत्रके पाठकोंसे ऐसी आशा करनेका क्या अधिकार है? उनकी बातमें जो मार्मिकता थी उससे इनकार नहीं किया जा सकता। फिर भी मैंने कहा 'नेता लोग आलोचनासे परे होते हैं मास्टरजी!'

एक मित्रकी कृपासे सेक्रेटेरियट देखनेको मिला। लिफ्टपर पहली बार मैं यहीं चढ़ा। यह एक विशाल भवन है और इसकी छतपर-से नयी दिल्लीकी एक बहुत सुन्दर झाँकी दिखाई देती है। एक ओर असेम्बलीका वह विशाल गोल भवन और दूसरी ओर गुम्बददार वायसरायका निवास-स्थान — गवर्नमेण्ट हाउस। चारों ओर फैले हुए ये सरकारी क्वार्टर और कनॉट प्लेसका वह शानदार बाजार जहाँ पाँच आनेकी चीज हमारे राजा-रईस एक रुपयेमें खरीद कर कृतार्थ होते हैं।

जमनाकी आँखोंसे मैंने देखा — दूर खड़ा यह लाल किला उदासीन भावसे इस वैभवकी ओर देख रहा है। मेरे मनमें आया, किसी दिन लाल किला भी तो इसी उत्साहसे बनाया गया होगा।

मुगल साम्राज्य अपने इन सुदृढ़ और सुन्दर भवनोंके कारण आज भी

स्मरणीय है और अँगरेजी साम्राज्य अपने स्मृति-चिह्न निर्माण कर रहा है।

दिल्लीमें कितने ही साम्राज्य उभे पनपे और विलीन हो गये। यह साम्राज्योंका प्रसूति-गृह भी है और श्मशान-मन्दिर भी। जीवन और मरण आदि और अन्त एवं सृष्टि और प्रलयका दिल्लीमें कितना सुन्दर सम्मिश्रण हुआ है।

हम इतिहासको पढ़ते हैं पर उससे कुछ सीखते नहीं। यही कारण है कि वह बार-बार अपनेको दोहराता है। राजपूतोंका अध्याय समाप्त हुआ और मुगलोंका आरम्भ। मुगलोंका अध्याय समाप्त हुआ और अँगरेजों-का आरम्भ। आज यही चल रहा है, पर कौन जानता है कि यह कितना लम्बा है। इतिहासके सभी अध्याय अपने वर्तमानमें अनन्त अटल और गर्वपूर्ण दीखते हैं पर समयका प्रभाव इस अभिमानको मिथ्या प्रमाणित कर देता है। वर्तमान कितना मोहक है कि हमें भविष्यकी ओर देखने ही नहीं देता।

लाल किला लम्बा आज रो रहा है। न वह शान और न वह वैभव। आज उसके कमरे जो किसी दिन राजकुमारों और राजकुमारियोंका स्वागत कर चुके हैं — मौन और भारी — सुनसान हैं। किसी दिन उनमें सैकड़ा मोमबत्तियोंका आलोक अठखेलियाँ कर चुका है आज वहाँ अँधेरा पड़ा है और उसमें न जाने कितनी प्रेम-कथाएँ सोयी पड़ी हैं। वे ताज और वे तख्त सभीकी सजीवता आज कहाँ है? आज वह लाल किला सरकसके पालतू हाथीकी तरह उदासीन भावसे खड़ा-खड़ा अपने अतीतको याद कर रहा है और उसे देखकर उसके अतीतको याद करके मुँहसे निकल पड़ता है

'एक हास्य में खेल रहा था विश्वविजय अलकासी में।
कहीं छिपा था वह विनाश भी उस वैभव की धर्मी में !!"

वेस्टमिन्स्टरके माडल-कोठरी भी हिन्दी अनुरूप थी। जिसको देखकर

यह आशा हुई थी कि दिल्लीके ऊँचे आफिसोंके बोर्डों की हालत ठीक होगी पर यहाँ भी निराश होना पड़ा। मैं समझता हूँ अब वह समय आ गया है, जब राष्ट्रभाषाके इस अपमानकी ओर हमारा ध्यान जाना चाहिए।

मैंने अपने मित्रसे कहा 'हम-जैसे खद्दरधारियोंको अपने दफ्तरमें ले जाते तुम्हें डर नहीं लगता' वे हँस पड़े। उन्होंने दिखाया — वे खुद खादी पहने हुए थे और साथ ही वहाँ ऐसे कर्मचारियोंकी संख्या काफी थी। मैंने अनुभव किया कि जो जितना बड़ा है वह उतना ही उदार है। एक थानेदार किसी परिचित कौमीको अपने आफिसरके सामने देखकर ऐसा मुँह बनाता है कि जैसे हमने उसे पहले कभी देखा ही नहीं। जो जितना छोटा है वह उतना ही दबा हुआ है।

दूसरे दिन शामको किंग्सवेमें महात्माजीकी प्रार्थनामें शरीक होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। सितारपर प्रार्थना हुई। प्रसन्नताकी बात है कि महात्माजी प्लेटोकी तरह कलासे नहीं डरते और संगीतसे उन्हें परहेज होनेका खतरा नहीं। महात्माजीके निकट बैठकर एक प्रकारकी विशेष पवित्रताका अनुभव होता है। ऐसा कौन है, जो बापूकी हँसी देखकर निहाल न हो जाये।

प्रार्थनामें एक अँगरेज सज्जन भी आये थे। उन्होंने श्रीमहादेव देसाई-से प्रार्थना की कि वे उन्हें महात्माजीसे मिला दें। एक-डेढ़ मिनिट व महात्माजीसे मिले। बाहर आनेपर उनकी बुढ़िया गृहिणीको भी ईर्ष्या हुई और उन्होंने अपने पतिको अकेले यह सुख लूटनेपर बहुत डाँटा। इस पर वे फिर देसाईजीके पास पहुँचे। फलस्वरूप उन्हें भी महात्माजीसे हाथ मिलानेका मौका मिला। महात्माजीके सामने वे ऐसी लगती थीं जैसे कानून उनकी पन्द्रह सालकी काले पानीकी सजा माफ कर दी हो!

माता कस्तूरी बाईके भी दर्शन हुए। इस बार वे बहुत बूढ़ी लगीं पर उनके चेहरेपर जो ओज मैंने इस बार देखा वह भी अपूर्व था। और उनका झुका हुआ सिर दर्शकको चक्करमें डाल देता है। महात्माजीने

क्या कर दिया है इस बेचारीको !

वास्तवमें महात्माजी प्राचीन भारतके ऋषियोंके नवीन संस्करण हैं और माता कस्तूरबा बाई ऋषि-पत्नीका और इन दोनोंका समन्वय उसी पवित्र वातावरणकी पुष्टि करता है, जिसमें सिंह अपनी हिंसकताको त्याग कर दुम हिलाने लगता है। नवयुगके इन ऋषियोंको मेरा कोटि-कोटि प्रणाम।

मित्रवर श्री हीरालालजीकी कृपासे पहाड़गंजकी पहाड़ियाँ देखनेका अवसर मिला। दिल्लीमें ऐसा सुन्दर प्रदेश घूमनेको मिलना सुख-चैनसे वंचित नागरिकके लिए एक सुखद अचम्भा है। देखकर तबीयत खुश हो गयी जैसे नया पकड़ा हुआ तोता सैय्यादकी मुट्ठीसे छूटकर अपने जंगली बोस्तान जा पहुँचा हो!

यहाँ मुगल साम्राज्यके समयकी एक चारदीवारी देखनेको मिली। पता चला कि यह भोली भटियारीकी सराय है। चारों ओर एक मजबूत दीवार है और उसीके अन्दर दो-तीन कोठरियाँ हैं, साथ ही एक कुआँ भी। सामने सुन्दर दरवाजा है।

मैं सोचने लगा कौन थी यह भोली भटियारी। भटियारी और भोली! कौन जानता है उसके इस भोलेपनने ही उसके इस वैभवकी आधार-शिला रखी हो?

किसी दिन देख लिया होगा मुगल सम्राट्ने उसे और हो गये होंगे प्रसन्न। बस दूसरे दिन भटियारीकी झोंपड़ियाँ इस पक्की सरायके रूपमें बदल गयी होंगी। भीतर कुएँपर चारों ओर पक्का हाशिया है। कौन जानता है इसपर प्रेमकी कितनी रंगरेलियाँ हो चुकी हैं! चाँदनी रात एक जरीकी मसनद, मुगल सम्राट और पास ही एक भोली भटियारी सुराकी उपासना आँखों-ही-आँखोंमें बातें कभी मीठी मुसकान और कभी अट्टहास। कितना सुन्दर दृश्य देख चुका है यह कूप। वाह रे भारतके कैसे दिन थे! उनका ध्यान आते ही बरबस-भरे हृदयसे निकल पड़ता है

'कितने देखे हैं तूने वैभव के कितने सपन!'

एक तसवीरके दो पहलू

मैं एक जंगली नागरिक हूँ। जंगली नागरिक कि रहता हूँ नगरमें खाता-पीता और जीता हूँ नगरमें पर जीनेका रस मुझे मिलता है जंगलोंसे खेतोंसे उपवनोंसे झीलोंसे पर्वतोंसे। जंगलमें बैठकर, प्रकृतिके साथ मिलकर, बातें करना हँसना खेलना मेरे जीवनका एक खास शौक है।

मेरे मित्रोंमें और परिवारमें ऐसे भी लोग हैं जो मुझे मेरे इस स्वभावके कारण घुमक्कड़ कहते हैं और ऐसे भी जो बातचीतमें घुमाव फिराव पसन्द नहीं करते और सीधे-सीधे मुझे आवारा कहते हैं। इन नामोंकी तह-दीकी संक्षेपमें यह है 'अरे भाई, बैठना-उठना चार साथी मित्रोंमें यह क्या कि जंगलमें इकले जा पड़े!" उन्हें समझानेको कभी मैं कहता हूँ कि भाई, जंगलमें जाकर भी जो अपनेको इकला महसूस करे, उससे अधिक अभागा कौन होगा तो वे इस तरह हँसते हैं कि मैंने जैसे कोई एकदम पागलपनकी बात कह दी हो।

तो जंगलोंमें घूमना और यूँ कहूँ कि नित-नये जंगलोंमें घूमना मेरा स्वभाव है। उस दिन घूमने निकला तो जा निकला बन्दरोंके बागमें। यहाँ सैकड़ों बन्दर रहते हैं। वे क्या खाकर जी-पनप रहे हैं मैं नहीं जानता पर हाँ मंगलके दिन नगरके दो-चार पुराने विचारोंके सज्जन यहाँ आते और इन्हें हनुमानजीका रूप समझ चने और गुड़ अवश्य खिला जाते हैं। पता नहीं उन्हें उससे लोक-परलोकमें क्या फल मिलता होगा पर यह अवश्य है कि यहाँका वानर-दल न तो मनुष्योंसे द्वेष ही रखता है और न भय ही खाता है। परन्तु पशुकी तरह प्रेमके मधुर पाशमें बंधकर हिल-सा गया है।

मैं एक वृक्षकी छायामें बैठ गया और संस्कृतका मधुर प्रेमाभिनय 'मालती-माधव' पढ़ने लगा। अद्भुत रचना है। मालतीकी आतुरता माधवका उत्कट अनुराग मकरन्दकी प्रेमपूर्ण चातुरी और मदयन्तिकाकी लाज-भरी प्रेम-मुद्राएँ पाठकको कोलाहलपूर्ण विश्वसे उठाकर प्रेमके उल्लास-मय विश्वमें पहुँचा देती हैं। पढ़ते-पढ़ते मैं झूम-झूम उठा खो-सो गया और एक ही प्रकरणको बार-बार पढ़ने लगा। देह शिथिल हो गयी। आँखोंमें नशा-सा छा गया। यह दुनिया ही निराली है।

नशा जरा ढीला पड़ा तो मेरा ध्यान वानर-बालकोंकी ओर चला गया। वे अपने ही रागमें मस्त थे। एक वृक्षके नीचे कुछ वानर-शिशु आपसमें खेल रहे थे। एक बच्चा दूसरेकी पीठपर चढ़ने लगा तो तीसरेने उसकी पूँछ पकड़कर खींच ली। जिसकी पूँछ खींची गयी थी उसने उछलकर खींचनेवालेका कान काट लिया।

एक बच्चा पासके छोटे-से वृक्षसे नीचे उतरा और उसने इन खेलते बच्चोंमें-से एकका मुँह चूम लिया। उस छोटे शिशुने भी उसका मुँह चूमना चाहा पर अपनी लघुताके कारण वह असफल रहा। दो-तीन बच्चोंने यह बात भाँप ली और उस बड़े बच्चेको बलपूर्वक पकड़ धरती-पर लिटा दिया। छोटे शिशुने यह देखा तो उसने लौटकर तड़ातड़ उसे बार बार चूमा और पेटपर एक मीठी चकोटी भी काटी। अब वह झुककर नीचेसे उठा और उनमें-से एकको गुदगुदाकर फिर पेड़पर चढ़ गया। प्यारमें हार भी जीत है जीत भी हार है। चारों ओर [illegible] साम्राज्य-सा छा गया — चारों ओर सरसता बरस-बरस गयी।

एक-दूसरे वृक्षके नीचे एक वानर माता अपने दो शिशुओंको सुलाने का प्रयत्न कर रही थी। हाँ [illegible] दोनों पर वे अपनी बालसुलभ चंचलताके कारण इधर-उधर उछल-कूद मचानेकी चेष्टामें थे। माँ बल-

तक एकको धुमकारकर सुलानेका प्रयत्न करती तबतक दूसरा उठ दौड़ता और जब वह दूसरेकी ओर दौड़ती तो पहला अपनी बाल-क्रीड़ा आरम्भ कर देता। जैसे-तैसे जबतक वह एकको हाथोंमें दबोच पाती तबतक दूसरा उसकी कमरपर चढ़ उसे धराशायी करनेके विफल पर अनन्त अध्यवसायपूर्ण प्रयत्नमें जुट पड़ता। माँ अत्यन्त व्यस्त थी और यों भी कि परेशान थी पर उसके मुखमण्डलपर झुँझलाहटका कोई चिह्न न था।

एक तीसरे पेड़की शीतल छायामें एक वानर-दम्पति पृथक् ही अपने प्रेममय विश्राम ले रहे थे। वानरी पैर फैलाये बैठी थी और वानर उसकी एक जंघापर अपना मस्तक रखे मीठी नींद ले रहा था। उसका एक हाथ वानरीके सम्पूर्ण कटि भागको अपनेमें लपेटे था मानो किसी भक्तिका मूर्तिमान् आशीर्वाद किसी विपद्ग्रस्त जनकी रक्षा कर रहा हो। वानरीका दक्षिण हस्त किसी देवबालाके वरदहस्तकी भाँति वानर के ललाट प्रदेशपर विलसित हो रहा था। वानरके मुख-मण्डलपर सात्त्विक शान्तिकी सरल आभा तृप्त सौन्दर्यकी प्रकाशमालाके साथ छिटक रही थी और वानरीकी पलकोंकी एवं मादक आँखोंमें प्रोद्भासित हो रहा था प्रेम-का पुण्य प्रतिबिम्ब मानो प्रशस्त प्रकाशपूरित चन्द्रकी विमल ज्योत्स्ना-द्वारा प्रक्षालित पुष्पके दो सुन्दर कटोरोंमें निर्मल ओस-बिन्दु प्रोल्लसित हो रहे हों।

पुनीत दाम्पत्य महामायाकी कल्याणमयी विभूति है। पारस्परिक प्रेम-से यह अनुप्राणित होता है और विश्वासके बलसे पाता है यह सम्बल। आत्मनिवेदनका यह सजीव चित्र है और प्रकृति-पुरुषके सम्मिलनका पुण्य प्रतिबिम्ब।

चारों ओर प्रेमका यही साम्राज्य छाया हुआ था। पशु-जगपिताके

इस वानर जीवनसे मैं बहुत प्रभावित हुआ। सोचने लगा इनमें परस्पर कितना प्रेम है। इनका जीवन कितना सरस है। न ईर्ष्या न द्वेष न दूसरोंको गिराकर स्वयं आगे बढ़नेकी कलुषित भावना। प्रकृति-पुलिन-क्रोडमें ये अलग ही अपनी दुनिया बसाये बैठे हैं। मैं कविके कल्पित प्रेमलोकसे कपियोंकी इस प्रत्यक्ष दुनियाका तुलनात्मक विवेचन करता हुआ अपने घर की ओर चल पड़ा।

मैं पहले भी कई बार यहाँ आया था पर आजके इस निरीक्षणसे वानर-दलके प्रति मेरे हृदयमें एक प्रकारकी आत्मीयता हो आयी। कलकल वापिस चलते समय मैंने हृदयमें एक मीठी कसकका अनुभव किया।

मित्रत्व क्या है? इसका उद्गम कहाँ है? इसमें इतना आकर्षण क्यों है? जीवनके अन्वेषणीय रहस्यसे अनुप्राणित इन प्रश्नोंका समाधान दो हृदयोंकी अनुकूलता एवं विराट्के साथ सूक्ष्मकी एकत्व आकांक्षामें सन्निहित है, पर इसे हृदयकी मूक भाषा समझनेवालोंके अतिरिक्त कौन अनुभव करेगा?

मैं अपनी विचार-वाटिकामें एकाकी विहार करता हुआ धीरे-धीरे घर की ओर जा रहा था। अचानक कहीं पास ही वानर-दलकी क्रोध-भरी चीं-चीं ने मुझे अपनी ओर आकर्षित किया। आँखें ऊपर उठा मैंने दृश्य देखा उसने मुझे स्तब्ध कर दिया मैं अवाक् रह गया।

एक जालीदार गाड़ीमें पचास-साठ वानर बन्द थे। सभीके मुख-मण्डल पर क्रोधकी कठोरता ताण्डव कर रही थी। एक-दूसरेको फाड़ खानेको तैयार था सभी बालक थे सभी तरुण!

गाड़ीवानने बताया "ये सुन्दरपुरसे पकड़कर हजारीके जंगलोंमें भेजे जा रहे हैं।"

मेरे कहनेपर गाड़ीवानने गाड़ी ठहरा दी। मैं और भी पास आ उन्हें गौरसे देखने लगा।

देखा एक वानर-शिशु जिसके भूखे मुखपर भूखकी दीनता बरस रही थी। दूध पीनेकी इच्छासे अपनी माताकी गोदमें और वक्ष पर समीप आते ही माताने उसे नोचना प्रारम्भ कर दिया और फिर तो उसका मस्तक अपने दोनों हाथोंमें दबाकर इस तरह चबाया कि खून बह निकला। बच्चा चिल्लाया, तड़पा पर माँके हृदयपर उसका कुछ भी प्रभाव न हुआ।

मातृत्वके साथ पैशाचिकताका ऐसा मर्मवेधक संयोग देखनेका मुझे कभी अवसर न मिला था। मेरी अन्तरात्मा काँप उठी। मैं इससे अधिक देखनेका साहस न कर सका।

यदि सागर ही शुष्क हो जाये उसमें ही धूल उड़ने लगे तो अन्यत्र जलप्राप्तिकी आशा कौन मूर्ख करेगा? मातृत्वमें भी यदि निर्दयता निवास करने लगे तो जीवनमें किसी अन्य स्रोत-स्नेह या सरसता-वात्सल्यके कुसुमित होनेकी सम्भावना कौन सहृदय करेगा?

गाड़ीवानको प्रस्थानका संकेत कर मैं चल पड़ा। दूर तक वानरोंके चीख-चीत्कारका भीषण निनाद मुझे सुनाई देता रहा।

यह दृश्य मेरे पूर्व परिकल्पित दृश्यके बिल्कुल प्रतिकूल था या यों कहिए ये दोनों एक ही तसवीरके दो पहलू थे।

मैं सोचने लगा जो माधी उपवनमें प्रेमकी पुनीत प्रतिमा सरसता-की सुन्दर निधि और स्नेहका सागर है, वही झाड़ीमें बैठकर दानवताका अवतार, क्रोधकी ज्वालामुखी एवं हृदय-हीनताकी मूर्ति कैसे हो गया?

हृदयमें एक हूक उठी स्वातन्त्र्य और पारतन्त्र्यमें यही तो अन्तर है !!

o